ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 18 अक्टूबर 2015 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 18 अक्टूबर 2015 से 24 अक्टूबर 2015

आ.शु. –05 ● वि० सं०–2072 ● वर्ष 58, अंक 42, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 192 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,116 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा एवं युवा समाज ओडिशा ने आयोजित की वैदिक प्रचार सभा

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा तथा आर्य युवासमाज की ओर से डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल युनिट–7 में वैदिक प्रचार सभा को आयोजित किया गया। जिसमें डी.ए.वी. स्कूल कटक और भुवनेश्वर के प्राचार्य, प्राचार्याओं के साथ लगभग 400 शिक्षक शिक्षिकाओं ने भाग लिया।

सभा की प्रधान प्राचार्या डॉ. श्रीमती भाग्यवती नायक जी ने सभी शिक्षकों को वैदिक विचारधारा तथा स्वामी दयानन्द जी के विचार पर वक्तव्य दिया यज्ञ का वातावरण वैदिक मंत्रोच्चारण से गूँज उठा। यज्ञ के पश्चात् संगीत शिक्षकों का द्वारा वैदिक भजन प्रस्तुत किया गये। डी.ए.वी. स्कूल की छात्रा दीक्षा दास ने शरीर को देवालय के साथ तुलना करते हुए सुमधुर वक्तव्य से सबका मन मोह लिया।

आर्यसमाज शहीद नगर के सभापति ई. प्रियव्रत दास जी तथा उनकी पत्नी श्रीमती शन्नो देवी मुख्यातिथि के रूप में उपस्थित थे। श्रीमती शन्नों देवी जी ने अपने अभिभाषण में कहा कि स्वाध्याय के साथ हमारा आहार और विचार शुद्ध होना चाहिए। मुख्य वक्ता श्रीयुत प्रियव्रत दास जी ने उद्‌बोधन करते हुए कहा कि डी.ए.वी. शिक्षण संस्था ही छात्रों के सर्वांगीण विकास कर सकते हैं। आर्यसमाज के शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुल और डी.ए.वी. का कार्य अवर्णनीय है। उन्होंने महात्मा हंसराज तथा स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन पर चर्चा करते हुए वैदिक साहित्यों के स्वाध्याय पर बल दिया।

आर्य युवासमाज की प्रधाना श्रीमती नमिता महाति ने उपस्थित शिक्षकों को वैदिक विचारधारा अपनाने के लिए कहा। तत्पश्चात् शांति पाठ के साथ सभा समाप्त हुई।

आर्य समाज महात्मा हंसराज पब्लिक स्कूल पंचकूला में हुई भजन संध्या

आर्य समाज महात्मा हंसराज पब्लिक स्कूल, सैक्टर–6, पंचकूला के सौजन्य से 'साक्षरता दिवस' के अवसर पर भजन–संध्या का आयोजन किया गया। वैदिक परपंरा के अनुसार कार्यक्रम का शुभारंभ देवयज्ञ–हवन से हुआ। सायंकालीन पावन वेला में भजन संध्या स्थल पर सैंकड़ों आर्य भाई–बहन मोहाली, चण्डीगढ़ के विभिन्न आर्य समाजों, पिंजौर व स्थानीय विभिन्न आर्य समाजों के लोग, शहर के गणमान्य प्रतिष्ठत व्यक्तियों में डॉ. कृष्ण सिंह आर्य, क्षेत्रीय निदेशक विजय कुमार व श्रीमान नरेन्द्र आहूजा आदि, आर्य शिक्षण संस्थाओं के प्राचार्यों की उपस्थित में कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री एस. के शर्मा, स्वामी विदेह योगी, श्रीमान हंसराज गंधार व अन्य महानुभावों ने दीप प्रज्ज्वलित करके भजन संध्या का आरंभ किया।

आर्य समाज की प्रधाना श्रीमती जया भारद्वाज ने भगवान को काटि–कोटि नमन करते हुए मुख्य अतिथि, विशिष्ट अतिथि, भजनोपदेशिका, पूज्य स्वामी जी तथा सभी उपस्थित आर्य भाई–बहनों व डी.ए.वी. संस्थाओं से आए हुए सहयोगी प्राचार्यों, का स्वागत, वंदन अभिनन्दन किया। उन्होंने कहा कि ईश्वर की कृपा व आप सब के आशीर्वाद से आर्य समाज, सैक्टर–6 विभिन्न कार्यो का आयोजन सफलतापूर्वक कर रहा है। 'वेद की तीन बातें' महात्मा आनंद स्वामी द्वारा लिखित पुस्तक का विमोचन प्रधान आर्य रत्न श्रीमान पूनम सूरी जी के करकमलों से किया गया व 'वेद की तीन बातें' पुस्तक सभी सत्संग प्रेमियों को नि:शुल्क वितरित की गई।

श्रद्धेया भजनोपदेशिका श्रीमती सुदेश आर्य जी ने अपने मधुर कंठ से वातावरण को भक्तिमय बना दिया। उनका भजन ईश्वर भक्ति व स्वामी दयानन्द से सम्बन्धित वैदिक मान्यताओं पर रहा।

मुख्य अतिथि श्रीमान एस. के. शर्मा जी ने अपने उद्‌बोधन में हम सब को आर्य रत्न श्रीमान पूनम सूरी जी का सीधा सम्बन्ध ऋषि दयानन्द से जोड़ कर बताया। उन्होंने कहा यह सौभाग्य की बात है कि डी.ए.वी. का कार्य महात्मा आनंद स्वामी जी के पौत्र मान्य श्री पूनम सूरी जी की देखरेख में आगे बढ़ रहा है। वे हमेशा डी.ए.वी. की गौरव गाथा दयानन्द व वेद से प्रारंभ किया करते हैं। मुझे इस कार्यक्रम को देख कर ऐसा लगता है कि पूर्वजों की भांति हम कर्तव्य के मानी बन रहे हैं। यहाँ मोहाली, पिंजौर, चण्डीगढ़ व स्थानीय समस्त आर्यजनों को मै हृदय से नमन करता हूँ। ऐसा संगम देखने को बहुत कम मिलता है। यह सुखद भविष्य का सूचक है, मैं इस कार्य के लिए आर्य समाज की प्रधाना जया भारद्वाज के सभी सहयोगियों को साधुवाद देता हूँ।

पूज्यपाद स्वामी विदेह योगी ने आशीर्वाद के रूप में साक्षरता दिवस पर प्रकाश डाला। साक्षरता के साथ संस्कारवान बनाना भी हम सब का उत्तरदायित्व है।

अंत में आर्य समाज की ओर से सभी पधारे हुए सभी सत्संग प्रेमियों का बहुत–बहुत धन्यवाद किया गया। कार्यक्रम के पश्चात् समस्तजनों के लिए ऋषि लंगर की व्यवस्था रही। सभी आर्यजनों ने कार्यक्रम की भूरि–भूरि प्रशंसा की।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – पूनम सूरी

आर्य जगत्

सप्ताह रविवार 18 अक्टूबर, 2015 से 24 अक्टूबर, 2015

हमें क्षमा करो

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

इमामग्ने शरर्णि मीमृषों नः, इममध्वानं यमगाम दूरात्।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृ मर्त्यानाम्।।

ऋग् 1.31.13

ऋषिः **हिरण्यस्तूपः आङ्गिरसः**। देवता **अग्निः**। छन्दः **त्रिष्टुप्**।

● **(अग्ने)** हे अग्रणी तेजस्वी परमात्मन्! **(नः)** हमारी **(इमां)** इस् **(शरणि)** [व्रतलोप रूप] हिंसा को **(मीमृषः)** क्षमा करो। **(इमं)** इस **(अध्वानं)** [भ्रांत] मार्ग के अवलम्बन को भी [क्षमा करो] **(यं)** जिस पर [हम] **(दूरात्)** दूर तक **(अगाम)** चल चुके हैं। [तुम] **(सोम्यानां)** सौम्य जनों के **(आपिः)** बन्धु, **(पिता)** पिता [और] **(प्रमातिः)** शुभचिन्तक [हो], **(मर्त्यानां)** मर्त्यों को **(भूमिः)** घुमानेवाले [और] **(ऋषिकृत्)** ऋषि बना देनेवाले **(असि)** हो।

अपने जीवन में हम अन्य हिंसाएँ करते हों या न करते हों, पर व्रत–लोपरूप आत्महिंसा तो निरन्तर करते रहते हैं। कभी हम सत्य–भाषण का व्रत लेते हैं, कभी नित्य सन्ध्या–वन्दन और अग्निहोत्र करने का व्रत लेते हैं, कभी नियमित व्यायामा और प्रातः भ्रमण का व्रत लेते हैं, कभी ब्रह्मचर्य–पालन का व्रत लेते हैं, कभी वेद के स्वाध्याय और प्रातः भ्रमण का व्रत लेते हैं, कभी ब्रह्मचर्य–पालन का व्रत लेते हैं, कभी वेद के स्वाध्याय का व्रत लेते है; पर शीघ्र ही इन ब्रतों को तोड़ भी देते हैं। हे परमात्मन्! तुम अग्नि हो, अग्रणी होकर सबका मार्ग–दर्शन करने वाले हो। हमारा भी मार्ग–दर्शन करो। तुम व्रत पति हो, हमें भी व्रतों पर दृढ़ रहने की शक्ति प्रदान करो। जो व्रत–भंगरूप हिंसा हम अब तक करते रहे हैं, उसके लिए हमें क्षमा करो।

व्रत–लोप के अतिरिक्त दूसरा अपराध हमने यह किया है कि हम अब तक भ्रांत राह पर चलते रहे, और उस भटकी राह पर चलते–चलते बहुत दूर निकल आये। अब यह देखकर हमारा सिर चकरा रहा है कि जितना गलत रास्ता हम पार कर चुके हैं, उससे वापिस लौटने के लिए हमें अनवरत कितना महान् प्रयास करना पड़ेगा। हे प्रकाशमय अग्निदेव! तुम्हीं प्रकाश देकर हमें उस कुमार्ग से वापिस लौटाओ। तुमसे दूर होकर जो हम भ्रांत पथ पर चल पड़े, उसके लिए भी तुम हमें क्षमा करो।

तुमसे क्षमा–याजना हम कारण नहीं कर रहे कि हम दंड से बचना चाहते हैं। हम जानते हैं कि दुष्कर्मों का दण्ड न देना रूप क्षमा तुम कभी नहीं करते हो। अतः तुम्हारे दण्ड का हम स्वागत करते हैं। व्रत–लोप और उन्मार्गगामिता का दुष्परिणाम हम पर्याप्त भोग चुके हैं और अब भी यदि कुछ भोग शेष है तो उसके लिए भी हम तैयार हैं। पर क्षमा–याजना हम भविष्य में उक्त अपराधों से बचने के लिए कर रहें हैं। क्षमा नही माँगता है जो अपने अपराध को स्वीकार करता है और उस अपराध से भविष्य में बचे रहने की जिसके मन में उत्कट चाह होती है। उसी मनोवृत्ति के के साथ हम तुम्हारे सम्मुख उपस्थिति होकर क्षमाप्रार्थी हो रहे हैं।

हे प्रभु! तुम सौम्यजनों के बन्धु, पिता और हितचिन्तक हो। तुम्हारी कृपा से हम भी सौम्य बन जाएँ। तुम 'भूमि' और 'ऋषिकृत्' हो। जैसे कुम्भकार मिट्टी को चाक पर घुमाकर उत्तमोत्तम पात्रों के रूप में परिणत कर देता है, वैसे ही तुम अपने दिव्य चक्र पर घुमाकर सामान्य मर्त्य को भी ऋषि बना देते हैं। हे देव! तुम हम पर भी अपनी कृपा बरसाओ, हम मर्त्यों को भी ऋषि बना दो।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

भक्त और भगवान

● महात्मा आनन्द स्वामी

पिछले अंक में बात हो रही थी विश्वास तब उत्पन्न होता है जब प्रभु के लिए प्रेम जाग उठे। उस समय प्रभु यदि भक्त की पुकार को न भी सुने तो भक्त निराश नहीं होता। वियोग भी उनके लिए योग बन जाता है।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान की सात अवस्थाओं को पार करके जब आदमी समाधि की अवस्था में पहुचंता है तब ईश्वर का पता लगता है। इस अवस्था में पहुंचो, वह परम आनन्द, परम ज्योतिस्वरूप तुम्हारे समक्ष खड़ा हो जायेगा।

वियोग के साथ प्यार का रंग चढ़ जाए तो भक्ति का जन्म होता है। भक्ति और अनुराम में वास्तव में बहुत अन्तर नहीं। गुरु और पिता के लिए जो अनुराग सन्तान के हृदय में उत्पन्न होता है उसे प्रेम कहते हैं। सन्तान के लिए माता–पिता के हृदय में जो अनुराग जन्म लेता है उसे स्नेह कहते हैं। ईश्वर के लिए मानव के हृदय में जो अनुराग जन्म लेता है उसे भक्ति कहते हैं। वियोग और प्यार से भरपूर भक्ति ही यह भावना जब उत्पन्न होती है तब जीवन भार प्रतीत होने लगता है। एक विचित्र उदासी छा जाती है, मनुष्य के मन पर। परन्तु उस उदासी, अशान्ति और घबराहट में भी अद्भुत नशा सा रहता है।

अब आगे...

परन्तु भक्ति के उत्पन्न होने से लक्ष्य की प्राप्ति तो नहीं होती! लक्ष्य तो अभी दूर है। अभी तो लक्ष्य पर जाने का मार्ग मिला है।

अभी तकमीले–उल्फ़त (2. प्रेम की पूर्णता) पर
न दिल मगरूर (3. अभिमानी) हो जाये।
ये मंजिल वो है जितनी तै हो उतनी दूर हो जाये।।

परन्तु घबराओं नहीं, मार्ग मिल जाए तो लक्ष्य मिलता है अवश्य। भक्ति की भावना जाग उठे तो मिलाप होता है अवश्य किस प्रकार होता है?

ऋग्वेद के सातवें मण्डल के 86वें सूक्त का छठा मन्त्र बताता है–

न स स्वो दक्षो वरुण ध्रु तिः सा सुरा
मन्युर्विभीदको अचित्तिः।
अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे
स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता।।

पहले इस मन्त्र का साधारण अर्थ सुनिये! हे वरुणदेव! जो मेरा अपना स्वरूप है, यह तो अनर्थ की ओर ले–जानेवाला नहीं। फिर क्या आपत्ति आ गई? अहो! यह मार्ग में पहाड़ बनकर खडी 'ध्रुति' वासना है– काम–वासना और अनेक वासनाएँ, ये बुद्धि को बिगाड़ने–वाली नशीली वस्तुएं, शराब आदि। यह क्रोध जो अनुपयुक्त स्थान पर प्रयोग हुआ, भय को उत्पन्न करता है। यह अतिक्रान्त लोभ और झूठा मोह और भय, और यह ह्रास जो बुद्धि का ह्रास करता है, इन सबके कारण से दूर हो गया मैं, मार्ग में भटक गया। देख ओ मेरे वरुणदेव! मैं एक छोटा–सा प्राणी हूँ, बड़े भाई की भाँति मेरा हाथ पकड़, बचा ले मुझे! तू ही बचा सकता है, और कोई बचाने वाला नहीं है।

इस मन्त्र में फिर ईश्वर को वरुण के नाम से पुकारा है। यह बार–बार वरुण शब्द क्यों आता है इन मंत्रों में? इसलिए कि भक्त भगवान् के पास जाने की प्रार्थना कर रहा है। भक्ति की भावना जाग उठी है। उसके मन में। उसके लिए ईश्वर से अधिक सुन्दर, अधिक प्रेमी और कोई रहा नहीं। वरुण का अर्थ है वह जिसे सर्वसुन्दर समझकर, मनमोहक, महान् शक्तिशाली और सुख देनेवाला समझकर वर लिया गया हो। अपने उस प्रीतम से पहले भक्ति ने पूछा, ''कब मिलोगे प्रियतम?'' तब पूछा, ''कौन–सा अपराध हो गया है मुझसे?'' तब कहा, ''अच्छा, अपराध हो गया तो कृपा कर दे, दर्शन दे दे, मैं भिक्षा माँगता हूँ तुझसे।''

कभी ऐ हक़ीक़ते–मुन्तज़र नज़र आ
लिबासे–मज़ाज में।
कि हज़ारों सिजदे तड़प रहे हैं मेरी
जबीने–नयाज़ में।।

परन्तु अब वह स्वयं सोचता है कि ऐसा क्या हो गया है कि मुझसे प्रीतम नहीं मिलते? कौन–सी दीवारें हैं जो उसके और मेरे मध्य खड़ी है? सोचता हुआ कहता है कि, ''मैं तो आत्मा हूँ, आत्मा अनर्थ की ओर नहीं जाता, फिर यह क्या बात है जिसके कारण मुझे प्रभु के दर्शन नहीं होते? कौन है मेरा शत्रु जो उसको मुझसे दूर रखे हुए है, कौन–सी दीवार है जो उसके और मेरे बीच में खड़ी है?

यह वासना ही सबसे पहली और सबसे बड़ी रुकावट है। और फिर बुद्धि को दूषित करनेवाली शराब, खुमारी लाने वाले नशे और आगे की वस्तुएँ। परन्तु इन सबकी जन्मदात्री तो वासना है।

यह वासना क्या है? जो भावना बनकर सूक्ष्म शरीर में इच्छा का रूप धारण करके रहती है, उसे वासना कहते हैं महर्षि वसिष्ठ

ने भी इसको वासना कहा है। 'योगवसिष्ठ' में वे कहते हैं–

अशेषेण परित्यागो वासनानां य उत्तमः।
मोक्ष इत्युच्यते तदग्न स एव विमलक्रमः।।
क्षीणायां तु वासनायां चेतो गलति सत्वरम्।
क्षीणायां शीतसंतप्तां ब्रह्मण हिमकणो यथा।।
अयं वासनया देहो धियते भूतपञ्जरः।
तनुनान्तर्निविष्टेन मुक्तौघस्तन्तु न यथा।।
वासना द्विविधा प्रोक्ता शुद्धा च मलिना तथा।
मलिना जन्मनो हेतुः शुद्धा जन्मविनाशिनी।।

'वासना का पूर्णरूपेण विनाश होने के पश्चात् ही वह भक्ति मिलती है, जिसे अज्ञान की मैल को धोने के पश्चात् ज्ञानी लोग प्राप्त करते हैं। जैसे सर्दी की ऋतु समाप्त होने पर पर्वत की बर्फ स्वयमेव पिघल जाती है, उसी प्रकार वासना के समाप्त होने पर वह चित्त भी नष्ट हो जाता है जिसमें वासना रहती है। इस वासना के कारण ही आत्मा को बार–बार शरीर मिलता है। जैसे मोतियों की माला मोतियों में पिरोये धागे के कारण स्थिर रहती है, वैसे ही यह शरीर वासना के कारण स्थिर है। यह वासना दो प्रकार की है– एक शुद्ध, दूसरी मलिन। मलिन वासना से बार–बार जन्म होता है। शुद्ध वासना से जन्म और मरण का बन्धन समाप्त हो जाता है।' यह है वासना, जो जन्म–जन्म से आत्मा के साथ चलती हुई, बार–बार उसे नये शरीर देती हुई, नये बन्धन जगाती हुई, नये जंजालों में फँसाती है। यह है सबसे बड़ी रुकावट।

परन्तु यह वासना है क्या? वास कहते हैं बस जाने को ।जो बस जाती है और बसा देती है उसे वासना कहते हैं। चमेली के पुष्पों को अपनी टोपी में रखिये, कुछ देर पडा रहने दीजिये, तब फूलों को फेंक दीजिये। परन्तु कोई भी व्यक्ति आपकी टोपी सूँघकर कहेगा कि इसमें चमेली के फूल रखे हुए थे। फूल नहीं रहे, वे चले गए, परन्तु अपनी वास टोपी में छोड़ गए। उसी प्रकार यह कर्म अपनी एक वासना चित्त में छोड़ जाता है। उत्तम कर्म कीजिये तो एक सफेदी–सी कर्म के पश्चात् रह जाती है, उसे हम पुण्य कहते हैं। बुरा कर्म कीजिये तो एक स्याही–सी रह जाती है, उसे हम पाप कहते हैं। ये पुण्य और पाप, दोनों वासना बनकर चित्त में रहते हैं। जैसे सुगन्ध या दुर्गन्ध अपने जन्म के कारण का नाश होने के पश्चात् भी रहती है, उसी प्रकार कर्म का फल मिलने के पश्चात् वासना चित्त में बैठी रहती है।

इस बात को अच्छी प्रकार समझिये। वासना को समझ लेने के पश्चात् शेष बातों को समझना बहुत आसान हो जाएगा।

आत्मा स्थूल नहीं है, सूक्ष्म है, परन्तु थोड़ी देर के लिए मान लो कि वह स्थूल है, तब यह बात अच्छी प्रकार समझ में आयेगी।

हम एक कर्म करते हैं, उसका फल मिलता है परन्तु उससे कर्म का अन्त नहीं हो जाता। कर्म और फल, दोनों के कारण चित्त (जो आत्मा से प्रतिबिम्बित होता है) में एक रेखा–सी पड़ जाती है। इस रेखा के कारण, उसकी प्रेरणा से आत्मा फिर उसी कर्म को करना चाहता है। यह चाहना ही वासना है। इसके कारण आत्मा फिर उसी कर्म को करता है, फिर फल को पाता है। रेखा पहले से भी गहरी हो जाती है। इसके कारण वासना और भी प्रबल हो उठती है। इस प्रकार जन्म और मृत्यु का चक्र चलता रहता है। उसका अन्त होने में नहीं आता।

चित्त में पड़ी रेखा से नये कर्म की प्रेरणा कैसे मिलती है, यह बात मनोविज्ञान के एक सिद्धान्त से समझिये।

आप में से कितने लोगों ने कश्मीर देखा है, यह मुझे पता नहीं। परन्तु मान लो कि आप कश्मीर गये। वहाँ पहलगाँव में एक रात रहे। उस रात बहुत भयंकर अन्धड़ आ गया। तूफ़ान में एक सज्जन महात्मा ने आपकी सहायता की।

अब यदि मैं कश्मीर कहूँ तो आपको पहलगाँव, वह रात्रि, वह अन्धड़, वह महात्मा, सब–के–सब याद आ जायेंगे। कैसे याद आ गये? कश्मीर का अर्थ तो पहलगाँव नहीं, अन्धड़ नहीं, महात्मा नहीं। वह सब–कुछ इसलिए स्मरण आया कि आप कश्मीर गये तो आपके मस्तिष्क में एक छोटी–सी रेखा बन गई; पहलगाँव में रात्रि व्यतीत की तो दूसरी रेखा बन गई अन्धड़ आया तो उसके साथ जुड़ी हुई एक तीसरी रेखा बन गई; महात्मा को देखा तो एक चौथी रेखा बन गई।

ये सब–की–सब रेखाएं अन्तःकरण के भीतर, उस स्थूल वस्तु में जिसे हम चित्त कहते हैं, वास्तव में बनती हैं। कश्मीर का नाम लेते ही एक रेखा जागती है, तब वह दूसरी को, तीसरी को, चौथी को जगा देती है। आपको दुःख भी होता है, सुख भी होता है, यद्यपि यह सब कुछ कश्मीर नहीं।

इसी प्रकार कर्म की इच्छा, कर्म की क्रिया और कर्म के फल के साथ भी आत्मा से प्रतिबिम्बित चित्त में रेखाएँ पड़ती जाती हैं। जिस प्रकार कश्मीर का शब्द बोलने से बहुत–सी ऐसी वस्तुएँ स्मरण हो आती हैं जो कश्मीर नहीं, इसी प्रकार चित्त में पड़ी हुई इन रेखाओं में से किसी एक रेखा के जागृत होने पर शेष रेखाएं स्वयं जाग उठती हैं। तब कर्म का चक्र चलने लगता है, फल का चक्र चलने लगता है। रेखाएं भी गहरी होती जाती हैं। इसलिए गुरु वसिष्ठ ने कहा कि धागे में जिस प्रकार मोती पिरोये रहते हैं, उसी प्रकार बार–बार मिलनेवाले ये शरीर वासना में पिरोये रहते हैं। इसी कारण जन्म और मरण का चक्र चलता है।

वासना के चार कारण हैं– हेतु, फल, आश्रय और आलम्बन।

हेतु का अर्थ वह वस्तु है जिससे वासना का जन्म होता है। यह वस्तु है शुभ या अशुभ कर्म

फल का अर्थ है वह वस्तु जो कर्म से उत्पन्न होती है। 'योगदर्शन' के अनुसार तीन वस्तुएं कर्म के कारण उत्पन्न होती हैं– योनि–शरीर (मनुष्य का, पशु का, कुत्ते, कीड़े–मकोड़े, मछली, वनस्पति, आदि का), आयु (काल जो इस जीवन में काटना है) और भोग (सुख या दुःख जो इस शरीर में और आयु में कर्म के कारण प्राप्त होगा)।

आश्रय का अर्थ है वह स्थान जहाँ वासना रहती है। यह स्थान है चित्त; प्रत्येक प्रकार की वासना का हैडक्वार्टर है यह। और, आलम्बन का अर्थ है सहारा– वह वस्तु जिसका प्रयोग करके वासना क्रियात्मक रूप धारण करती है। ये सहारे हैं इन्द्रियों के विषय।

इनको लाठी बनाकर यह पंगु वासना आगे बढ़ती है; वह सब–कुछ करती है जिससे कर्म का बन्धन और भी दृढ़ होता है, जन्म और मरण का चक्र समाप्त होने में नहीं आता।

अब सीधी–सी बात है कि वासना को समाप्त करना है, तो इन चारों कारणों को समाप्त कर दीजिये। यदि ये कारण नहीं रहेंगे तो वासना रहेगी नहीं। आप कहेंगे– यह कैसी अनहोनी बात कहते हो आनन्द स्वामी? सबसे पहला कारण तो कर्म है। उसे समाप्त कैसे करें? कर्म के बिना मनुष्य रहेगा कैसे? आपका कहना यथार्थ है कि कर्म के बिना कोइ भी कभी रहता नहीं। भगवान् कृष्ण ने भी अर्जुन के यह शंका करने पर कि कर्म और संन्यास इनमें से बड़ क्या है उसे उत्तर दिया–

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते।। (गीता 5/2)

संन्यास और कर्मयोग दोनों में अधिक कल्याणकारी, अधिक श्रेष्ठ, कर्मयोग है। कर्म के बिना वास्तव में कोई रहता भी नहीं।

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।
(गीता 2/14)

ये सभी प्राणी, मनुष्य और पशु अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न बादल से उत्पन्न होता है, बादल यज्ञ से उत्पन्न होते हैं, यज्ञ कर्म से उत्पन्न होता हैं।

कर्म से छुटकारा वास्तव में नहीं है, तब वासना के लिए इस पहले कारण को समाप्त करें तो किस प्रकार? इसका उत्तर देते हुए भगवान कृष्ण ने कहा–

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये।।
(गीता 5/11)

योगी लोग भी कर्म करते हैं, शरीर से, मन से, बुद्धि से, इन्द्रियों से भी; अपनी आत्मा की शुद्धि के लिए 'संग' को त्यागकर वे कर्म करते हैं। इन्हीं की भाँति तू भी कर्म कर।

यह संग को त्यागना क्या है? इसका उत्तर भी श्री कृष्ण ने दिया–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।
(गीता 2/47)

कर्म करो अवश्य, कर्म से मुख न मोड़ो, परन्तु ध्यान रखो तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में है, उनके फल की चिन्ता करने में नहीं। फल की इच्छा से कर्म न करो।

शेष अगले अंक में....

वैदिक प्रार्थना

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा।। यजु. 19.39

I need cleansing and purification
of thoughts and actions
I have many failings and weaknesses
May the Enlightened One help me
cleanse and purify
my body and soul,
my mind and intellect,
my words and actions.
O Lord, make me pious and pure.

दोष मुझमें ढेर होंगे;
देवजन, ज्ञानी तपस्वी झाड़ पोंछ पवित्रा कर दें
मुझे; मेरी बुद्धि, मेरा मन तथा सब कर्म मेरे
शुद्ध और पवित्रा होवें।
अग्नि, जल, आकाश, पृथ्वी,
वायु, जिनसे यह बना है देह मेरा, करें निर्मल !
और प्रभु सर्वज्ञ तुम भी कलुष सब मेरे हटा कर
मुझे पूर्ण पवित्र कर दो!

पंच महायज्ञ पाँच कष्टों को काटने वाले होते हैं

● खुशहाल चन्द्र आर्य

हमारे त्यागी, तपस्वी, विद्वान्, ऋर्षि–मुनियों ने हर व्यक्ति को विशेषकर गृहस्थी को पाँच महायज्ञ नित्य सुचारु रूप से करने का आदेश दिया है। इन पाँच महायज्ञों से अनेकों लाभ तो हैं ही, पर विशेष लाभ यह है कि ये पाँचों यज्ञ पाँच किस्म के दुःखों व कष्टों को दूर करने वाले भी हैं। यानी इन यज्ञों से दुःखों व कष्टों का निराकरण होता है। वे पाँच महायज्ञ हैं– (1) ब्रह्म यज्ञ (2) देव यज्ञ (3) पितृ यज्ञ (4) बलि–वैश्व–देव यज्ञ (5) अतिथि यज्ञ और कष्ट हैं।

आत्मिक, शारीरिक, पारिवारिक, प्राकृतिक तथा अज्ञान से बढ़ती दूरिया। पाँच यज्ञों से पाँच कष्ट कैसे दूर होते है उनका संक्षित परिचय यहाँ देते हैं **(1) ब्रह्म यज्ञः** ब्रह्म यज्ञ, आत्मा के दुःखों व कष्टों का निवारण करके, आनन्द की अनुभूति करवाता है। ब्रह्म यज्ञ का तात्पर्य है सन्ध्योपासना करना तथा वेद आदि धार्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय करना। मनुष्य को ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना नित्य प्रातः व सायं करनी चाहिए। इससे आत्मा में आये विकार यानी ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, हिंसा आदि दोष नष्ट हो जाते हैं और उनकी जगह प्रेम, दया, करुणा, परोपकार की भावना व आनन्द का संचार होता है। ईश्वर की स्तुति, प्रार्थनोपासना का तात्पर्य है कि हम किसी एक शान्त व स्वच्छ स्थान पर मन को सब ओर से हटाकर, समग्र चित्त से अपनी दृष्टि को बाहर से हटाकर अन्दर डाल कर पहले तो हम ईश्वर की स्तुति यानी प्रशंसा करें कि हे ईश्वर! आप कितने सामर्थ्यवान हो और किस प्रकार सृष्टि की रचना करके उसका संचालन व संहार भी आप ही करते हो और जीवों को उनके किये अच्छे व बुरे कर्मों का फल भी आप ही अपनी न्याय व्यवस्था से किस प्रकार देते हो यह ध्यान देना चाहिए। फिर अपने पूर्ण सामर्थ्य के बाद जो काम नहीं बनता हो उसकी सफलता पाने के लिए और अधिक सामर्थ्य पाने की ईश्वर से प्रार्थना करनी चहिए। फिर उसके पास बैठ कर अपने अवगुणों व दोषों का ध्यान करना चाहिए और ईश्वर के गुणों का स्मरण करते हुए अपने दोषों को छोड़ना और ईश्वर के गुणों को अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार मनुष्य ब्रह्म ज्ञान से अपने दुर्गुणों को छोड़ता है और ईश्वर के गुण दया, करुणा व परोपकार की भावना से जुड़ता हुआ अपने जीवन को पवित्र बनाता है। ब्रह्मयज्ञ में सन्ध्योपासना के साथ–साथ वेदों तथा धार्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय करना भी आता है जिससे मनुष्य अपने ज्ञान को बढ़ाता है और वेदों के अनुसार चलकर मोक्ष की तरफ अग्रसर होता है, जो जीव का अंतिम लक्ष्य है, जिसको पाने के लिए जीव अच्छे कर्म करते हुए मनुष्य योनि में आता है।

(2) देव यज्ञः यह महायज्ञ मनुष्यों के शरीर से संबंध रखता है। देव यज्ञ का तात्पर्य है, हवन करके सब जड़ देवों को प्रसन्न करना। विश्व के पाँच जड़ देवता हैं जिनके नाम हैं, जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी और आकाश। इन पाँचों जड़ देवताओं का अग्नि मुख है। जिस प्रकार हम अपने शरीर को स्वस्थ रखने के लिए मुख से भोजन करते हैं और इस भोजन का पेट में जाकर रस, रक्त आदि बनकर पूरे शरीर में जाता है और पूरे शरीर की कमियों की पूर्ति करता है, तब मनुष्य स्वस्थ रह पाता है। यही काम यज्ञ का है। वह भी अग्नि में जो घृत, सामग्री व समिधा आदि डाली जाती है। उसकी सुगन्ध अग्नि में डालने से हज़ार गुणा बढ़ जाती है और वह सुगन्ध जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी व आकाश में फैल कर सब को सुगंधित कर देती है जिससे सारा वातावरण शुद्ध और पवित्र हो जाता है। ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ जाती है जो जीव के लिए लाभदायक है। हाइड्रोजन गैस कम हो जाती है जिससे मनुष्य का शरीर स्वस्थ रहता है यानी शरीर में जो रोग व बीमारियां रहती हैं, वे दूर हो जाती हैं और शरीर स्वस्थ हो जाने से मनुष्य का जीवन सुखी व आनन्दित बन जाता है।

(3) पितृ यज्ञः पितृ यज्ञ से परिवार व गृहस्थ सुखी बनता है। जिस घर में पितर जनों का आदर व सम्मान होगा तथा उनकी सभी आवश्यकताएं पूर्ण होगीं तो उनके आशीर्वाद और उनके अनुभवों का लाभ उस परिवार को मिलेगा जिससे वह परिवार भी सुखी बना रहेगा। हमारे पौराणिक भाई मरे हुओं का श्राद्ध व तर्पण करते हैं, परन्तु वेद हमें मरे हुए पितरों का श्राद्ध व तर्पण करना नहीं सिखाता बल्कि जीवित माता–पिता व वृद्ध जनों की श्रृद्धापूर्वक सेवा, सुश्रूषा करके उनकी आत्मा को प्रसन्न रखना सिखाता है जिसको श्राद्ध कहते हैं। अपने स्वभाव व व्यवहार से बड़ों के मन को तृप्त रखना ही तर्पण कहलाता है जो जीवितों का ही कर पाना संभव है। मरने के बाद करना एक अन्ध विश्वास ही है।

(4) बलिवैश्वदेव यज्ञः इस यज्ञ से सब जीवों को प्रसन्न रखना है। जो भूखा है उसको भोजन देना, जो प्यासा है उसको जल देना। जो असहाय है उसकी सहायता करना। जो जीव हम पर आश्रित है उसकी रक्षा करना ही बलिवैश्वदेव यज्ञ है। इस यज्ञ में जीव हिंसा को कोई स्थान नहीं है। जब सब जीव प्रसन्न रहेंगे तो प्रकृति भी शान्त रहेगी उसमें किसी प्रकार का प्रकोप नहीं होगा और सब जगह शान्ति बनी रहेगी।

(5) अतिथि यज्ञः घरों में अज्ञानता से जो वैमनस्य बना रहता है, आपस में वैर–भाव रहता है और परस्पर लड़ते–झगड़ते रहते हैं। अतिथि यज्ञ से ये सब समाप्त हो जाते हैं। अतिथि यज्ञ का तात्पर्य यह है कि गृहस्थियों के घर पर साधु, सन्त, सन्यासी, विद्वान, वानप्रस्थी व गुरुकुलों के आचार्यों व ब्रह्मचारियों का आना–जाना बना रहना। जिस गृहस्थ में सन्यासी, वानप्रस्थी व विद्वानों का आदर–सत्कार होगा, उनके घरों में प्रवचन होंगे, उपदेश होंगे तो उस घर में परस्पर का विरोध व कटुता कभी भी नहीं रहेगी कारण परस्पर का विरोध व कटुता अज्ञान से उत्पन्न होती है। जब सन्यासियों और विद्वानों के सद्उपदेश जिस घर में होंगे उस घर से अज्ञानता दूर हो जायेगी और परस्पर का प्रेम व सहृदयता का वातावरण बन जायेगा, तब पति–पत्नी, सास–बहू, भाई–भाई का झगड़ा कभी नहीं होगा और वह घर परस्पर के शुद्ध व्यवहार से स्वर्ग के समान बन जायेगा। इस प्रकार इन पाँच महायज्ञों से ऊपर लिखे इन पाँच दुःखों व कष्टों की निवृत्ति होती है। इसलिए हर कार्य को विशेषकर हर गृहस्थी को अपना जीवन व गृहस्थ को सुखी बनाने के लिए ये पाँच महायज्ञ अवश्य करने चाहिए।

इस लेख को लिखने के भाव मेरे मन में तब जगे जब आर्य समाज बड़ा बाजार का वेद–सप्ताह यानी श्रावणी–उपक्रम जो 23 से 29 अगस्त 2015 तक मानाया गया था। उसी के प्रथम दिन प्रातः के सत्र में पूज्य आचार्य ब्रह्मदत्त जी का प्रववचन इसी विषय पर हुआ था। वह प्रवचन मुझे बहुत अच्छा लगा, इसलिए इस का लाभ अन्य विज्ञ पाठक जन भी उठा सकें, इस भावना से प्रेरित होकर मैंने यह लेख लिखा है। आशा है इसका अधिक से अधिक लाभ पाठक गण उठायेंगे।

गोविन्दराम आर्य एण्ड सन्स
180 महात्मा गांधी रोड़ (दो तल्ला)
कोलकाता 700007 फोन
22183825,64505013
आफिस 26758903
निवास (033) मो. 9830135794

हम बीमार क्यों होते हैं

आपने देखा होगा कि हस्पतालों में मरीजों की लाइनें लगी रहती हैं। कभी आपने सोचा है कि ये बीमारियां क्यों आती हैं? आयुर्वेद के अनुसार जब हम आहार–विहार में कुपथ्य करते हैं तब रोग में फंस जाते हैं। यह पूर्ण सत्य है। जब मन और और इन्द्रियों के वशीभूत होकर गलत काम करोगे तो बीमारी आएगी।।

नोट करो – स्वास्थ्यरुपी भवन के तीन स्तम्भ हैं।

1. आहार (भोजन) 2. निद्रा 3. ब्रह्मचर्य

यदि स्वस्थ रहना चाहते हो तो इन तीन स्तम्भों को सुन्दर सुदृढ़ बना कर रखो। शुद्ध सात्विक भोजन करो। मांस, मछली, अण्डा मनुष्य का भोजन नहीं है। इनके खाने से बुद्धि भ्रष्ट होती है। और शरीर में अनेक प्रकार के भयंकर रोग लग जाते हैं। शाकाहारी भोजन ही लाभदायक हितकर है। सच पूछे तो दूषित भोजन के कारण ही भ्रष्टाचार फैला रहा है। क्योंकि जैसा आहार होगा वैसा ही मन में विचार होगा। विचारों जैसा ही व्यवहार होगा। विस्तार से बचने के लिए सारांश में लिखा है। अपना भोजन सुधारो। मन लगाकर परिश्रम करो और पूरा आराम करो। संयम से जीवन यापन करो।

देवराज आर्यमित्र
नई दिल्ली – 64

उत्कृष्ट शंका समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका –समाधि की प्राप्ति में गुरु का कितना सहयोग चाहिये?

समाधान – समाधि की प्राप्ति में 'गुरु' का उतना ही सहयोग चाहिए, जितना कि वैज्ञानिक (साइंटिस्ट) बनने के लिए साइंस टीचर का चाहिए। जैसे साइंस टीचर के बिना कोई व्यक्ति साइंटिस्ट नहीं बन सकता, वैसे ही बिना गुरु के 'समाधि' की उपलब्धि संभव नहीं है। वस्तुतः सामान्य नियम तो यही है। हालांकि इसके अपवाद भी हो सकते हैं। कोई ऐसा भी हो सकता है, जो पूर्व जन्म के संस्कार और विद्या लेकर आया हो, वह किसी मनुष्य को गुरु बनाये बिना ही पूर्व संचित विद्या से पुरुषार्थ करके और ईश्वर रूपी गुरु की सहायता से समाधि को प्राप्त कर ले। अरअसल, अपवाद (एक्सेप्शन) हर जगह होते हैं। इसलिए यदि किसी को मनुष्य शरीरधारी गुरु के बिना समाधि प्राप्त हो जाए, तो वह अपवाद की श्रेणी में रखा जाएगा। लेकिन यह सामान्य नियम नहीं है। सामान्य नियम तो यही है, कि जैसे गणित पढ़ाने के लिए, साइंस पढ़ाने के लिए, कॉमर्स पढ़ाने के लिए अध्यापक, शिक्षक चाहिए वैसे ही योग समाधि के लिए भी देहधारी शिक्षक चाहिए, गुरुजी चाहिए।

शंका –ईश्वर ने सृष्टि बनाई, यह कैसे सिद्ध करें?

समाधान– देखिये, तीन पदार्थ हैं– एक ईश्वर, एक जीवात्मा, एक प्रकृति। इन तीनों के बार में विचार करेंगे, बारी–बारी से चिंतन करेंगे। फिर कोई न कोई निर्णय हो जाएगा।

पहला प्रश्न – क्या जीवात्मा सृष्टि बना सकता है। उत्तर है –जीवात्मा सृष्टि को नहीं बना सकता। तारों को नहीं बना सकता, पृथ्वी को नहीं बना सकता। यह उसके वश की बात नहीं है। उसमें इतनी शक्ति, बुद्धि व योग्यता ही नहीं है। तो तीन में से एक का निर्णय तो हो गया, कि जीवात्मा सृष्टि नहीं बना सकता।

दूसरा प्रश्न– क्या प्रकृति स्वयं पृथ्वी बना सकती है? उत्तर है– कभी नहीं बना सकती। क्योंकि उसमें अक्ल ही नहीं है। सृष्टि की रचना को देखने से पता चलता है, कि कितनी बुद्धिमत्ता का इसमें प्रयोग किया गया है। बहुत बुद्धिमता से व्यवस्थित पृथ्वी बनी हुई है। किसी भी पेड़–पत्ते को देख लीजिए। वनस्पति शास्त्र पढ़िये। ऊँचे–नीचे वृक्षों की रचना को देखिए, तो आपको पता चलेगा, कि कितनी व्यवस्थित है। शरीर विज्ञान पढ़िये। शरीर रचना को देखिए, कि वो कितनी व्यवस्थित है। नस, नाड़ियाँ, पाचन तंत्र तंत्रिका तंत्र आदि, सारे सिस्टम कितने व्यवस्थित हैं। इनमें जो इतनी व्यवस्था है–इसको प्रकृति अपने आप नहीं बना सकती। उसमें इतनी अक्ल नहीं है। तीन में से दो का निर्णय हो गया। न तो जीवात्मा बना सकता है। उसमें इतनी विद्या और शक्ति नहीं है। न तो प्रकृति स्वयं बना सकती है, क्योंकि उसमें तो बिल्कुल अक्ल ही नहीं है। अब तीन में से दो का निर्णय हो गया। बाकी कौन बना? जो बचा है, वही सृष्टिकर्ता है। इसमें वही है–परिशेष न्याय। यानी बचे हुए पदार्थ का नियम। तो तीन में से दो बातें कैंसिल हो गयीं। जीव और प्रकृति ने सृष्टि नहीं बनाई। बाकी 'ईश्वर' बचा, उसी ने जगत बनाया। यह अनुमान प्रमाण से सिद्ध हो गया, कि ईश्वर ने ही 'सृष्टि' बनाई है। उसमें इतनी बुद्धि और इतनी शक्ति है, कि वह अकेला ही सारी सृष्टि बना देता है।

अंतःकरण से, अन्दर से ही ईश्वरानुभूति का आनन्द महसूस होता है। उसको हम अन्दर से ही अनुभव कर सकते हैं, वाणी से नहीं समझा सकते। वाणी से सिर्फ इतना ही बोल सकते हैं–बहुत बढ़िया होता है, बहुत अच्छा है, बहुत आनंद आता है। वाणी से इससे अधिक नहीं कह सकते। तो ईश्वर का आन्तरिक सूक्ष्म प्रत्यक्ष कैसा होता है, समाधि लगाओ तब ही पता चलेगा।

ईश्वर की सिद्धि प्रत्यक्ष प्रमाण से कैसे करेंगे? उत्तर है, कि–एक होता है, 'बाह्य प्रत्यक्ष', और एक होता है, 'आंतरिक प्रत्यक्ष'। जब कोई व्यक्ति अच्छा काम करने लगता है, तो उसको अपने अंदर से आनंद, उत्साह, निर्भयता जैसे अनुकूल भाव महसूस होते हैं। और जब बुरा काम करने की योजना बनाता है, तब अंदर से भय, शंका, लज्जा का अनुभव होता है। 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखा है– यह जीवात्मा की ओर से नहीं, परमेश्वर की ओर से है। अब अगर हमको भय, शंका, लज्जा का अनुभव होता है, तो यह प्रत्यक्ष अनुभव है। यह किसकी ओर से है? ईश्वर की ओर से है। यह ईश्वर का सूक्ष्म प्रत्यक्ष है। परन्तु स्थूल (मोटे) स्तर का प्रत्यक्ष है। इसके बाद का आंतकरक प्रत्यक्ष भी होता है, जो सारे जीवों को नहीं होता है। स्थूल प्रत्यक्ष का अनुभव तो सभी लोग कर सकते हैं। जो बुरा काम करेगा, उसके अन्दर भय, शंका लज्जा होगी। ईश्वर अपना सिग्नल भेज रहा है, गलत काम कर रहे हो। यह है–रेड सिग्नल, यानी खतरा है। मत करो। तो इस तरह ईश्वर का आंतरिक

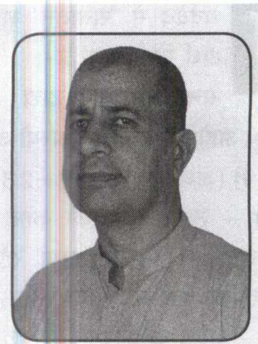

स्थूल अनुभव हो सकता है। विशेष–सूक्ष्म प्रत्यक्ष करना हो, तो 'समाधि में ईश्वर का विशेष–(सूक्ष्म) अनुभव या प्रत्यक्ष होता है। उसमें ईश्वर से आनन्द, ज्ञान, बल आदि मिलता है। अब समाधि का अनुभव हम आपको शब्दों से नहीं बता सकते। क्योंकि यह अन्दर से स्वयं ही अनुभव करने की वस्तु है। उदाहरण के लिए, जब आपने रसगुल्ला खाया, तब उसमें कैसा टेस्ट लगा? बढ़िया लगा। आप कैसे समझाओगे? नहीं समझा सकते। आप सभी यही कहेंगे, कि 'बड़ा स्वादिष्ट है, बहुत मीठा है।' इतना कहने से क्या मुझे समझ में आ गया, कि यह कैसा स्वाद है। जब आप रसगुल्लों लैसी स्थूल वस्तु का स्वाद नहीं समझा सकते, तो हम आपको भगवान जैसी सूक्ष्म वस्तु का आनंद कैसे समझाएंगे? वो तो और बहुत कठिन है। तो शास्त्रकार लिखते हैं– ''शक्यते वर्णयितुं गिरा'' अर्थात् वाणी से उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ''स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते।''

अंतःकरण से, अन्दर से ही ईश्वरानुभूति का आनन्द महसूस होता है। उसको हम अन्दर से ही अनुभव कर सकते हैं, वाणी से नहीं समझा सकते। वाणी से सिर्फ इतना ही बोल सकते हैं–बहुत बढ़िया होता है, बहुत अच्छा है, बहुत आनंद आता है। वाणी से इससे अधिक नहीं कह सकते। तो ईश्वर का आन्तरिक सूक्ष्म प्रत्यक्ष कैसा होता है, समाधि लगाओ तब ही पता चलेगा।

दर्शन योग महाविद्यालय
रोजड़ (गुजरात)

गुरुकुल हरिपुर में श्रावणी उपाकर्म व षष्ठ चतुर्वेद प्रायण महायज्ञ सम्पन्न

नुआपड़ा जिला स्थित गुरुकुल हरिपुर, जुनानी में श्रावणी पर्व के अवसर पर गुरुकुल में नूतन प्रविष्ट 30 ब्रह्मचारियों का उपनयन, वेदारम्भ संस्कार तथा ''पूजा की वास्तविकता एवं बोलबम की निरर्थकता'' से सम्बन्धित शिक्षाप्रद सांस्कृतिक कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर गुरुकुल द्वारा पूर्णिमा से लेकर अमावस्या तक पर्यावरण प्रदूषण समस्या, ग्लोबल वार्मिंग की समस्या एवं अनावृष्टि–अतिवृष्टि तथा असाध्य रोगों से आज का समाज बचे तथा विश्व शान्ति व राष्ट्र रक्षा निमित्त पन्द्रह दिवसीय चतुर्वेद पारायण महायज्ञ का आयोजन किया गया। जिसमें लगभग 1 क्वि. शुद्ध गाय घी एवं विभिन्न औषधियों से निर्मित लगभग डेढ़ क्विंटल सामग्री से आहुतियां दी गईं। 15 दिनों तक चलने वाले इस महायज्ञ के कार्यक्रम में श्री ए.बी. स्वामी राज्यसभा सांसद, श्री बसन्त कुमार पण्डा विधायक नुआपड़ा, श्री प्रदीप कुमार नायक पी.डी. नुआपड़ा, मुख्य अभियन्त्री बिजली विभाग नुआपड़ा, श्री प्रेम कुमार आजाद अध्यक्ष वकील संझा नुआपड़ा, श्री लम्बोदर नियाल जिला परिषद् सदस्य खरियार, श्री सरोज कुमार साहू उपाध्यक्ष ओड़िशा क्रीकेट एशोसियेशन, श्री विनोद कुमार जायसवाल सामजसेवी रायपुर (छ.ग.) इत्यादि अनेक गणमान्य सज्जन उपस्थित हुये।

कार्यक्रम की विशेषता यह थी कि नियमित नुआपड़ा, खरियाररोड़ एवं विभिन्न गांव से धर्मप्रेमी सज्जनगण उपस्थित होकर यज्ञ में आहुति प्रदान कर यज्ञ भगवान् से आशीर्वाद लेते थे। इसी प्रकार विगत छे वर्षों से यह चतुर्वेद पारायण महायज्ञ गुरुकुल भूमि में आयोजित हो रहा है।

यह समस्त कार्यक्रम गुरुकुल के संचालक डॉ. सुदर्शन देव आचार्य जी के प्रत्यक्ष सान्निध्य व मार्गदर्शन तथा गुरुकुल के आचार्य श्री दिलीप कुमार जिज्ञासु, श्री धर्मराज पुरुषार्थी तथा गुरुकुल के समस्त अधिकारिगणों के पुनीत सहयोग से सम्पन्न हुआ।

सनातन धर्म और आर्य समाज

● कृष्ण चन्द्र गर्ग

अथर्ववेद में 'सनातन' शब्द का अर्थ किया गया है–

सनातनमेनमाहुरताद्य स्यात् पुनर्णवः। अहोरात्रे प्रजायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः ।। (अथर्ववेद 10–8–23)

अर्थ – सनातन उसको कहते हैं जो कभी पुराना न हो, सदा नया रहे, जैसे दिन–रात का चक्र सदा नया रहता है।

वेद – सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर द्वारा दिया वो ज्ञान है जिसकी मनुष्य को संसार में रहते हुए आवश्यकता है और जिसको जान करके मनुष्य सुख पूर्वक रह सकता है। 'वेद' शब्द का अर्थ ही ज्ञान है। वेद ज्ञान दो अरब वर्ष पहले जितना सत्य और व्यवहारिक था आज भी उतना ही सत्य और व्यवहारिक है। अतः वेद सनातन हैं और वेद का ज्ञान भी सनातन है।

सनातन धर्म वेद को धर्म का आधार मानता है और आर्य समाज भी वेद को धर्म का आधार मानता है। वेदों के अतिरिक्त दूसरे ग्रन्थों में जो जो बातें वेद अनुकूल हैं आर्य समाज उन्हें स्वीकार करता है और जो जो बातें वेद विरुद्ध हैं आर्य समाज उन्हें स्वीकार नहीं करता। सनातन धर्म ने बहुत सी बातें वेद विरुद्ध भी स्वीकार कर ली हैं। यही अन्तर है सनातन धर्म और आर्य समाज में। वेद विरुद्ध बातों को स्वीकार करना और उन्हें व्यवहार में अपनाना ही आर्य (हिन्दू) जाति के पतन का कारण बना है।

1. **ईश्वर का स्वरुप** – वेदों में अनेक स्थानों पर ईश्वर के स्वरूप का वर्णन है–

ओ३म् खं ब्रह्म। (यजुर्वेद 40, 17)

अर्थ – प्रकाश के समान व्यापक, सबसे बड़ा, सब जगत का रक्षक ओ३म् है।

ईशा वास्यमिदं सर्व यत्किंच जगत्यां जगत्। (यजुर्वेद 40, 1)

अर्थ – इस गतिशील संसार में जो कुछ भी है उस सब में ईश्वर का वास है।

स पयगात् शुक्रम् अकायम् अव्रणम्। (यजुर्वेद 40, 8)

अर्थ – वह परमात्मा सर्वत्र व्यापक है। वह शीघ्रकारी है। उसका कोई शरीर नहीं है। वह छिद्र रहित है।

न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यशः। (युजुर्वेद 32, 3)

अर्थ – उस परमात्मा की कोई आकृति या मूर्ति नहीं है। उसे नापा या तोला नहीं जा सकता। उस परमात्मा का नामस्मरण अर्थात् उसकी आज्ञा का पालन करना अर्थात् धर्मयुक्त कामों का करना बहुत कीर्ति देने वाला है।

वेद ईश्वर द्वारा दिया मनुष्यों के लिए विधान है। वेद के अनुसार चलना ही ईश्वर की आज्ञा का पालन करना है। वेद के विरुद्ध चलना ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन करना है।

आर्य समाज वेद में वर्णित ईश्वर के इस स्वरूप को ही स्वीकार करता है।

2. **मूर्तिपूजा** – आर्य समाज मूर्तिपूजा को ईश्वर की पूजा नहीं मानता। मूर्तिदर्शन मूर्तिदर्शन है, ईश्वर दर्शन नहीं है। संसार में बौद्ध काल से पहले किसी भी रूप में मूर्तिपूजा प्रचलित न थी।

वेद, शास्त्र, उपनिषद्, मनुस्मृति आदि किसी भी वैदिक ग्रन्थ में मूर्तिपूजा का विधान नहीं है। आदि शंकराचार्य, गुरु नानक देव, कबीर, दादू, समर्थ गुरु रामदास, राजा राममोहन राय, महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि महापुरुषों ने मूर्तिपूजा का पुरजोर खण्डन और विरोध किया है।

मूर्ति पूजा सबसे बड़ी अज्ञानता है। यह व्यर्थ ही नहीं अपितु हिन्दुओं के विनाश का सबसे बड़ा कारण है। मूर्तिपूजा के सहारे हिन्दू कायर, कमजोर, निरुत्साही और अपुरुषार्थी हुए हैं। मुसलमानों ने हजारों मन्दिरों और मूर्तियों को तोड़ा है और वहां से अथाह धन लूटा है। किसी मूर्ति ने किसी हमलावर का सिर तक न फोड़ा।

और भी, मूर्तिपूजा से सन्तुष्ट होकर हिन्दुओं ने ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को जानने का प्रयत्न भी नहीं किया। सर्वव्यापक होने से ईश्वर हमारे सब कामों को देखता है और जानता है। उनके अनुसार वह हमें सुख और दुख के रूप में फल देता है। वह पूर्ण न्यायकारी है। उसके न्याय से कोई बच नहीं सकता। यह बात जानकर बुरे कामों से बचा जाए ताकि उनके परिणाम स्वरूप दुख न भोगना पड़े। साथ ही ईश्वर के न्यायकारी, सत्यकर्त्ता, ज्ञानवान, पवित्र, दयालु आदि गुणों को याद करके उन्हें अपनाया जाए ताकि सुख मिले। यही ईश्वर का नाम स्मरण है।

निराकार होने से ईश्वर आँख का विषय नहीं है। वह मन का विषय है।

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चैनम्।

हृदा हृदिस्थं मनसा च एनमेव विदुरमृतास्ते भवन्ति।। (श्वेताश्वतर उपनिषद् 4–20)

अर्थ – परमात्मा का कोई रूप नहीं जिसे आँख से देखा जा सके। उसे कोई भी आँख से नहीं देखता। वह हृदय में स्थित है। जो उसे हृदय से तथा मन से जान लेते हैं वे आनन्द को प्राप्त करते हैं।

3. **धर्म क्या है** – महाभारत में विदुरनीति के अन्तर्गत श्लोक है –

नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति। न तत् सत्यं यत् छलेनाभ्युपेतम्।। (विदुरनीति 3–58)

अर्थ – वह धर्म नहीं है जहां सत्य नहीं है। वह सत्य नहीं है जिसमें छल है।

इस प्रकार – सत्य यह धर्म, असत्य यह अधर्म।

न्याय यह धर्म, अन्याय यह अधर्म।

निष्पक्ष यह धर्म, पक्षपात यह अधर्म।

न लिंगम् धर्मकारणम्। (मनुस्मृति) अर्थ – बाहरी चिन्ह किसी को धर्मात्मा नहीं बनाते।

काला–पीला चोगा पहनना, दाढ़ी–मूँह या सिर के बाल बढ़ाना, कण्ठी–माला धारण करना, हाथ में चिमटा रखना, तिलक लगाना आदि बातों का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है।

आचारः परमो धर्मः। (मनुस्मृति 1–108)

अर्थ – शुभ गुणों के आचरण का नाम ही धर्म है। मन–वचन–कर्म से सत्य का आचरण, पक्षपात रहित न्याय, परोपकार, सदाचार आदि का नाम धर्म है। संसार के सभी मनुष्यों का यही धर्म है जिसे वेद में मानव धर्म कहा गया है।

ईसाई, पारसी, यहूदी, इस्लाम आदि धर्म नहीं हैं। ये पंथ (मजहब, सम्प्रदाय, religion) हैं जो किसी व्यक्ति द्वारा चलाए लोगों के समूह हैं। इन सम्प्रदायों के कारण ही संसार में अशान्ति और शत्रुता है। ईश्वर ने ये पंथ नहीं बनाए, सिर्फ इंसान बनाए हैं। इसलिए सही अर्थों में इंसान ही बनना चाहिए।

4. **श्राद्ध**–जीवित माता–पिता, दादा–दादी, नाना–नानी आदि की खान–पान, वस्त्र, निवास, सद्व्यवहार से सेवा करने को ही आर्य समाज श्राद्ध मानता है। जो मर गए हैं उनके प्रति ये बातें लागू नहीं होतीं। मरने के बाद अगले जन्म में वे जहां चले गए हैं ईश्वर उनकी वहीं पर व्यवस्था करता है। अगर वे मनुष्य की योनि में गए हैं तो माता के स्तनों में वह दूध पहले ही पैदा कर देता है।

5. **जातपात** – देश में प्रचलित जातपात को आर्य समाज स्वीकार नहीं करता। वेदों में ऐसी जातपात का कोई विधान नहीं है। वेद तो कहता है–

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुः सौमगाय। (ऋग्वेद 5–60–5)

अर्थ – हम में कोई छोटा या बड़ा नहीं है। हम सब आपस में भाई–भाई हैं। हम सबको मिल करके समृद्धि के लिए काम करना चाहिए।

महर्षि मनु ने समाज की सभी समस्याओं को तीन भागों में बांटा था – अज्ञान, अन्याय और अभाव। जो लोग शिक्षा द्वारा अज्ञान को दूर करते थे वे ब्राह्मण कहलाए, जो लोग समाज को सुरक्षा प्रदान करके अन्याय से बचाते थे वे क्षत्रिय कहलाए और जो लोग समाज की रोटी, कपड़ा, मकान, आदि की आवश्यकताएं पूरी करते थे वे वैश्य कहे जाते थे। शेष रहे लोग ऊपर बताए तीनों प्रकार के लोगों की सहायता करते थे, वे शूद्र कहलाए। यह व्यवस्था जन्म के आधार पर न थी, अपितु व्यक्ति की बौद्धिक और शारीरिक योग्यता के आधार पर थी। आर्य समाज इसी व्यवस्था को स्वीकार करता है जैसे आज कल अध्यापक हैं, पुलिस और सेना है, किसान और व्यापारी हैं। ये जन्म के आधार पर नहीं हैं अपितु व्यक्ति की योग्यता के अनुसार हैं।

6. **अवतारवाद** – सनातन धर्म के लोग ऐसा मानते हैं कि कोई विशेष काम करने के लिए ईश्वर मनुष्य के रूप में जन्म लेता है। इसे वे ईश्वर का अवतार मानते हैं। आर्य समाज ऐसा नहीं मानता।

ईश्वर पहले ही सब जगह विद्यमान है। इसलिए उसके आने–जाने की बात सार्थक नहीं है। ईश्वर इतना शक्तिशाली है कि वह सूर्य, चंद, तारे, पृथ्वी आदि सारे ब्रह्माण्ड को बनाता है। तो क्या किसी आदमी को मारने आदि छोटे काम उसके लिए मुश्किल हैं? नहीं। इसलिए उसके मनुष्य रूप में आने की कल्पना सर्वथा व्यर्थ है, ईश्वर का अपमान है। वह तो सब मनुष्यों के अन्दर पहले ही विद्यमान है। ईश्वर न जन्म लेता है, न मरता है, वह सदा एकसा सब जगह रहता है।

महाभारत में श्री कृष्ण जी कहते हैं–

अहं ति तत् करिष्यामि परमपुरुषकारतः। दैवं तु न मया शक्यं कर्म कर्त्तुं कथंचन।।

अर्थ – मैं एक श्रेष्ठ पुरुष की भाँति अपनी मेहनत से तो काम करूँगा, परन्तु ईश्वर के विधान में दखल देना मेरे सामर्थ्य से बाहर है।

सीता हरण के बाद श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण से कहते हैं–

न मद्विधो दुष्कृत कर्मचारी मन्ये द्वितीयोऽस्ति वसुन्धरायाम्।

शोकेन शोको हि परम्पराया मामेति भिन्दन् हृदयं मनश्च।। (वाल्मीकि रामायण – अरण्य काण्ड)

अर्थ – मैं समझता हूँ कि इस भूमि पर मेरे समान दुष्कर्म करने वाला और कोई नहीं है क्योंकि शोक पर शोक मेरे हृदय और मन को भेदने को प्राप्त हो रहे हैं।

7. **योगेश्वर श्री कृष्ण जी का पवित्र जीवन चरित्र** – महाभारत में श्री कृष्ण जी का जीवन बड़ा पवित्र बताया गया है। उन्होंने जन्म से मृत्य तक कोई भी बुरा काम किया हो – ऐसा नहीं लिखा। वे एक पत्नीव्रती थे। उनकी पत्नी थी रुक्मणी। वे सुदर्शन चक्रधारी, योगेश्वर, नीतिनिपुण, युद्ध में पाण्डवों को विजय दिलाने वाले, कंस, जरासंध आदि दुष्ट पापाचारी राजाओं का वध करने वाले थे।

परन्तु भागवत पुराण, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में श्री कृष्ण जी पर दूध–दही–मक्खन की चोरी, कुब्जा दासी से सम्भोग, परस्त्रियों से रासलीला क्रीड़ा आदि झूठे दोष लगाए हैं। गोपालसहस्रनाम में श्री कृष्ण जी को चौरजारशिखामणि तक का खिताब दिया गया है जिसका अर्थ है चोरों और जारों का सरदार। ऐसी बातों को पढ़–पढ़ा और सुन–सुना कर दूसरे मत वाले श्री कृष्ण जी

शेष पृष्ठ 07 पर ☞

☞ पृष्ठ 06 का शेष

सनातन धर्म और...

की बहुत सी निन्दा करते हैं और हिन्दुओं का मज़ाक उड़ाते हैं।

महाभारत में वर्णित श्री कृष्ण जी का स्वरूप ही उनका वास्तविक स्वरूप है। भागवत आदि पुराण महर्षि वेद व्यास के बनाए हुए नहीं है। ये बहुत बाद में बनाए गए ग्रन्थ हैं जिनमें स्वार्थी लोगों ने श्री कृष्ण जी पर ऐसे झूठे लांछन लगाए हैं। आर्य समाज श्री कृष्ण जी के उसी रूप को स्वीकार करता है जो महाभारत में बताया गया है।

8. गंगा नदी का महत्त्व – गंगा एक बड़ी नदी है जो भारतवर्ष के बहुत से भूभाग में से होकर गुजरती है। देश की बहुत सी खेती–बाड़ी तथा अन्य जरूरतें गंगा के पानी पर निर्भर हैं। इसलिए देश के लिए गंगा का बड़ा महत्त्व है। ऐसा मान लेना कि गंगा में डुबकी लगाने से पाप धुल जाते हैं निरी अज्ञानता है। पाप या पुण्य का फल तो भोगे बिना नहीं मिटता। यही न्यायकारी प्रभु का अटल विधान है।

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति। विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति।। (मनुस्मृति 5–3)

अर्थ – जल से शरीर शुद्ध होता है, मन सत्य के आचरण से शुद्ध होता है। विद्या से और तप से (सब प्रकार के कष्ट उठाकर भी धर्म का आचरण करने से) जीवात्मा पवित्र होता है और बुद्धि ज्ञान से पवित्र होती है।

आर्य समाज की यही मान्यता है।

9. सुख–दुख का कारण – कोई भी परेशानी आ पड़ने पर सनातनधर्मी लोग ग्रहों को उसका कारण मानते हैं। फिर ग्रहों को शान्त करने के लिए तथा मुसीबत से निकलने का उपाय ढूँढने के लिए तथाकथित पण्डितों के पास जाते हैं। ऐसे पण्डित लोग इधर–उधर की बातें करके उन्हें चक्रों में डालते हैं और वे झूठे आश्वासन देकर उनसे धन ऐंठते हैं।

आर्य समाज मानता है कि सुख–दुख मनुष्य के अपने अच्छे और बुरे कामों का फल हैं। यह ईश्वर की न्याय व्यवस्था है– जैसी करनी वैसी भरनी, जो बोया सो काटा। कोई पण्डित, पाधा, ज्योतिषी इस व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। ग्रह जड़ हैं जैसे हमारी पृथ्वी है। वे ज्ञानहीन हैं, बुद्धिहीन हैं। वे किसी से प्रेम या द्वेष नहीं कर सकते। ग्रहों का प्रभाव सबके ऊपर एकसा रहता है जैसे सूर्य का प्रकाश और गर्मी सबके लिए है।

10. व्रत – सनातनधर्मी लोग किसी विशेष दिन कम खाना, बदलकर खाना, कुसमय खाना या न खाने को व्रत मानते हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में वेद तो कुछ और ही कहता है जिसे आर्य समाज मानता है।

ओ३म् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि।। (यजुर्वेद 1 – 5)

अर्थ – हे सत्य धर्म के उपदेशक, व्रतों के पालक प्रभु! मैं असत्य को छोड़कर सत्य को ग्रहण करने का व्रत लेता हूँ। आप मुझे ऐसा सामर्थ्य दो कि मेरा यह व्रत सिद्ध हो अर्थात् मैं अपने व्रत पर पूरा उतरूँ।

11. दान – सुपात्र को दान देना एक शुभ कर्म है, परन्तु कुपात्र को देना पाप है।

सुपात्र कौन – गरीब, रोगी, अंगहीन, अनाथ, कोढ़ी, विधवा या कोई भी जरूरतमन्द, विद्या और कला कौशल की वृद्धि के लिए, गौशाला, अनाथालय, हस्पताल आदि दान के सुपात्र हैं।

न पापत्वाय रासीय। (अथर्ववेद) अर्थ – मैं पाप के लिए कभी दान न दूँ।

धनिने धनं मा प्रयच्छ। दरिद्रान्भर कौन्तेय। (महाभारत)

अर्थ – हे युधिष्ठिर! धनवानों को धन मत दो, गरीबों की पालना करो।

भरे पेट को रोटी देना उतना ही गलत है जितना स्वस्थ को औषधि। रोटी भूखे के लिए है और औषधि रोगी के लिए है। समुद्र में हुई वर्षा व्यर्थ है।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते। वाय न्नगौमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्। (मनुस्मृति 4–233)

अर्थ – संसार में जितने दान हैं अर्थात् जल, अन्न, गौ, भूमि, वस्त्र, तिल, सुवर्ण, घी आदि इन सब दानों से वेद विद्या का दान अति श्रेष्ठ है।

12. आर्य और हिन्दू शब्द – वेद, शास्त्र, मनुस्मृति, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, गीता आदि सभी प्राचीन ग्रन्थों में आर्य शब्द ही मिलता है, हिन्दू नहीं। संस्कृत के कोष 'शब्दकल्पद्रुम' में आर्य शब्द के अर्थ – पूज्य, श्रेष्ठ, धार्मिक, उदार, न्यायकारी, मेहनत करने वाला आदि किये हैं।

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। (ऋग्वेद 9 – 63 – 5) अर्थ – सारे संसार को आर्य (श्रेष्ठ) बनाओ।

अनार्य इति मामार्याः पुत्र विक्रायकं ध्रुवम्। (वाल्मीकि रामायण – अयोध्या काण्ड)

अर्थ – (राजा दशरथ राम को वन में भेजना न चाहते थे) वे कहते हैं – आर्य लोग (सज्जन) मुझ पुत्र बेचने वाले को निश्चय ही अनार्य (दुष्ट) बताएंगे।

हिन्दू शब्द मुसलमानों ने घृणा के रूप में हमें दिया है। यह फारसी भाषा का शब्द है। फारसी भाषा के शब्दकोश में 'हिन्दू' का अर्थ है – चोर, डाकू, गुलाम, काफिर, काला आदि। मुसलमान आक्रमणकारी जब भारत में आए उन्होंने यहां के लोगों को लूटा, मारा तथा पकड़ कर गुलाम बनाकर अपने साथ अपने देश में ले गए। वहां ले जाकर उनसे अनाज पिसवाया, घास खुदवायी, मल–मूत्र आदि उठवाया तथा बाजारों में बेचा। तब उन्होंने यहां के लोगों को 'हिन्दू' नाम दिया।

आठवीं सदी से पहले यानि कि मुसलमानों के आने से पहले भारतवर्ष में हिन्दू शब्द का प्रचलन न था, सब जगह आर्य और आर्यावर्त्त शब्द ही प्रसिद्ध थे। चीनी यात्री हुएनसांग भारत में सातवीं सदी में (सन् 631 से 645 तक) आया था। वह इस देश का नाम आर्य देश लिखता है।

सन् 1870 में काशी में टेढ़ा नीम नामक स्थान पर काशी के राजा के अधीन एक धर्मसभा हुई। सभा में विश्वनाथ शर्मा, बाबा शास्त्री आदि 45 विद्वानों ने विचार विमर्श के बाद यह व्यवस्था दी थी कि 'हिन्दू' नाम हमारा नहीं है, यह मुसलमानों की भाषा का है और इसका अर्थ है अधर्मी। अतः इसे कोई स्वीकार न करे।

हिन्दू–शब्दो हि यवनेषु अधर्मीजन बोधकः। अतो नाहर्ति तत् शब्द बोध्यतां सकलो जनः।।

13. हम आर्य, जो आजकल हिन्दू नाम से जाने जाते हैं, ही भारतवर्ष के मूल निवासी हैं – संसार में सबसे पुराने कोई ग्रन्थ हैं तो वे हैं आर्यों के ग्रन्थ – वेद। संसार में सबसे पुराना कोई साहित्य है तो वह है आर्यों का संस्कृत भाषा में साहित्य। संस्कृत के किसी ग्रन्थ में ऐसा नहीं लिखा है कि आर्य भारतवर्ष में कहीं बाहर से आए थे। इस देश का नाम पहले आर्यावर्त्त था ऐसा बहुत से ग्रन्थों में लिखा मिलता है। आर्यावर्त्त से पहले इस देश का क्या नाम था कहीं भी नहीं लिखा मिलता। अतः निश्चित है कि आर्यों से पहले इस देश में कोई और न था और न ही इस देश का कोई और नाम था। इसलिए यह बात कि 'आर्य इस देश में कहीं बाहर से आकर बसे थे' सत्य नहीं है।

आर्यों (हिन्दुओं) में फूट डालने के लिए द्रविड़ों को आर्यों से भिन्न बताया गया था। जबकि वास्तविकता यह है कि द्रविड़ शब्द आर्य ब्राह्मणों के दस कुलों में से पांच कुलों में होता है जिसमें आदि शंकराचार्य जैसे ब्राह्मण पैदा हुए।

पीछे रूस में एक अंतर्राष्ट्रीय गोष्ठी हुई थी। उसमें भारत सरकार के एक प्रतिनिधि मण्डल ने भी भाग लिया था। उस प्रतिनिधि मण्डल में इतिहासविद, भाषा वैज्ञानिक तथा पुरातत्त्ववेत्ता थे। उन्होंने गोष्ठी में भाग लेते हुए आर्यों (हिन्दुओं) के ईरान, अफगानिस्तान, मध्य एशिया आदि से आकर भारत में बस जाने की बात का एकमत होकर खण्डन किया था और उनके इस मत को गोष्ठी में उपस्थित सभी देशों के प्रतिनिधियों ने बहुत सराहा था। यह समाचार 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के 31 अक्तूबर 1977 के अंक में छपा था।

ईरान के स्कूलों में बच्चों को पढ़ाया जाता रहा है ''आर्यों का एक समूह ईरान की ओर आया और यहीं बस गया। इसलिए अपने नाम पर उन्होंने इस देश का नाम ईरान रखा। हम उन आर्यों की सन्तान हैं।''

डेविड फ्रौले (David Frauley) ने एक पुस्तक लिखी है जिसका नाम है 'दी मिथ ऑफ दी आर्यन इनवेजन ऑफ इण्डिया'। वह लिखता है कि आर्यों के भारतवर्ष में कहीं बाहर से आने की बात तथा यहां के लोगों पर हमले की बात दोनों ही निराधार हैं। वह लिखता है कि भारत में आर्यों तथा अन्यों में धर्म और संस्कृति के आधार पर कोई भी भेद नहीं है। आर्य भारतवर्ष के ही मूल निवासी हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती का मत है कि आर्य इसी देश के मूल निवासी हैं। उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में महाभारत काल से लेकर मुसलमानों का शासन आरम्भ होने तक यानी कि अब से पाँच हजार वर्ष पूर्व से लेकर आठ सौ वर्ष पूर्व तक दिल्ली पर शासन करने वाले सभी आर्य राजाओं के नाम तथा उनके शासन काल दिए हैं। इनमें महाराज युधिष्ठिर से लेकर महाराजा यशपाल तक एक सौ चौबीस राजे हुए जिन्होंने कुल चार हजार एक सौ सत्तावन वर्ष, नौ महीने, चौदह दिन राज्य किया। महाराजा युधिष्ठिर से पहले के सभी राजाओं के नाम महाभारत में लिखे हैं। इस बात से पूरी तरह प्रमाणित हो जाता है कि आर्य ही सदा से इस भूमि पर रह रहे हैं।

14. तुलसी – एक औषधीय पौधा है। जैसे अदरक, हल्दी, सौंफ, जीरा, लहसुन आदि शरीर के लिए हितकारी हैं ऐसे ही तुलसी भी शरीर से अहुत से रोग दूर करती है।

15. तप – कष्ट उठाकर भी सत्य और पक्षपात रहित न्याय का आचरण, परोपकार आदि शुभ कर्म करने का नाम तप है। धूनी लगा के सेंकने का नाम तप नहीं है।

16. तीर्थ – **'जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि'** अर्थात् जिन करके मनुष्य दुखों से तरें उनका नाम तीर्थ है। वेद आदि सत्य शास्त्रों का पढ़ना–पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का संग, योगाभ्यास, परोपकार, सत्य का आचरण, ज्ञान–विज्ञान आदि शुभ गुण दुखों से तारने वाले हैं, अतः ये तीर्थ हैं।

17. भाग्य क्या है – अपने ही किए हुए अच्छे–बुरे कर्म, जिनका फल हमें पहले नहीं मिला, अब मिल रहा है भाग्य कहलाता है।

18. फूल तोड़ना पाप है – ईश्वर ने फूल सुगन्ध और सुन्दरता के लिए दिए हैं। डाली से तोड़ने के थोड़ी देर बाद वे सुन्दरता और सुगन्ध दोनों खो बैठते हैं। पानी में पड़कर सड़कर वे दुर्गन्ध देते हैं जो प्राणियों के लिए अहितकर है। इस इस प्रकार सुगन्ध

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

जीवन का उद्देश्य : पुरुषार्थ चतुष्टय

चौथा पुरुषार्थ–मोक्ष

● डॉ. महेश विद्यालंकार

भारतीय जीवनचिन्तन में मानव–जीवन का अन्तिम लक्ष्य तथा पड़ाव मोक्ष माना गया है। जब तक जीवात्मा मोक्ष की स्थिति में नहीं आता है, तब तक वह आवागमन और दुःखों से छूट नहीं पाता है। जन्ममरण का यह क्रम अनादिकाल से चल रहा है। न जाने जीव कितने जन्मों से तरह–तरह की योनियों में भटक रहा है। जीव संसार में अपने कर्मानुसार जन्म लेता है। कर्मानुसार कर्मफल भोग कर पुनः वह जन्ममरण के बन्धन में बँध जाता है। इस अवस्था में कोई सिफारिश व पक्षपात नहीं चलता है। संसार की कोई शक्ति जीव को कर्मफल के बन्धन से मुक्त नहीं कर सकती है। इसमें तो परमात्मा की व्यवस्था ही मान्य है। यह मानव–जीवन इसलिये भी महान्, श्रेष्ठ तथा दैवी वरदान माना गया है, क्योंकि मनुष्ययोनि में ही आत्मा ज्ञानी बनकर पापपुण्य के भेद को समझकर अपने स्वरूप को पहचान सकता है। आत्मबोध करके ही परमात्मा का बोध होगा। बिना अपने स्वरूप को जाने परमात्मा तक नहीं पहुँचा जा सकता है। तत्त्वदर्शी कहते हैं– आत्मा ही परमात्मा की प्राप्ति का द्वार है।

वेद, दर्शन, उपनिषद्, गीता, रामायण आदि सभी धर्मग्रन्थ एवं ज्ञानी ऋषि, मुनि और सन्त एक स्वर से पुकार–पुकार कर कह रहे हैं कि मानवजन्म का मुख्य उद्देश्य प्रभु सान्निध्य और मोक्षप्राप्ति है। मुक्तावस्था तक आते–आते और जीवनमुक्त होने में अनेक जन्म लग जाते हैं। गीता कहती है–

अनेकजन्मसंसिद्धिः

अनेक जन्मों में जीवात्मा उत्तरोत्तर उन्नति, प्रगति, साधना, भक्ति, निष्कामकर्म, योगाभ्यास आदि करता हुआ मोक्ष का अधिकारी बनता है। इसके मार्ग में कठोर व कठिन परीक्षाएँ देनी पड़ती हैं। इतिहास साक्षी है कि अनेक ऋषियों, मुनियों योगियों आदि ने मोक्षप्राप्ति के लिये कई जीवन लगा दिए और सम्पूर्ण जीवन तप, योगसाधना और ब्रह्मचिन्तन में व्यतीत कर दिया। भारत को मोक्षभूमि कहा जाता है। यहाँ तत्त्वज्ञानियों ने मोक्षकामना के समक्ष सांसारिक सुख–भोगों तथा वैभव को ठुकराया। उन्होंने मोक्ष के अलावा कुछ नहीं चाहा। मोक्ष ही जीव की परमगति है।

मोक्ष में ही आत्मा को सच्चा आनन्द प्राप्त होगा। बड़ा प्रसिद्ध प्रेरक प्रसंग कठोपनिषद् में आता है। यमाचार्य नचिकेता को तीसरे वरदान के बदले में कहते हैं– "नचिकेता! संसार के उत्तम से उत्तम सुख–भोग, आराम, वैभव, राज्य, धन, ऐश्वर्य आदि जो चाहो ले लो, परन्तु **नचिकेतः मरणं मा प्राक्षीः** –नचिकेता, तुम, मृत्यु और जीवन के रहस्य को मत पूछो।" नचिकेता यमाचार्य को कहते हैं– "आप संसारी पदार्थों का मुझे प्रलोभन दे रहे हैं। ये सभी भोग की चीजें क्षणिक तथा नश्वर हैं। जब तक इनका भोग एवं साथ है, तभी तक ये सुखदायी लगती हैं। बाद में ये ही पदार्थ दुःख का कारण बन जाते हैं। इन वस्तुओं में जीवन का स्थायी सुख व सारतत्त्व नहीं है। मुझे तो मृत्यु से छूटकर अमृतत्व की प्राप्ति कैसे हो, इस रहस्य को बताओ। मुझे दुनियावी चीजों के आकर्षण में मत उलझाओ।" जब यमाचार्य ने नचिकेता को सच्चे आत्मज्ञान तथा मोक्ष का जिज्ञासु समझा, तब उसे मृत्यु और आत्मा के रहस्य को बताया। प्रलोभनों और आकर्षणों में न फँसने वाली ऐसी ही पवित्र और पुण्यात्माएँ जगत् में महापुरुष तथा चमत्कारी देवपुरुष कहलाती हैं।

मोक्ष को ही परम पुरुषार्थ, परमधाम, कैवल्य, अपवर्ग, आदि भी कहते हैं। इस विषय पर ऋषियों, मुनियों, सन्तों एवं ज्ञानियों ने बड़ी गहराई व सफलता से चिन्तन किया है। जीवन की गहराई में जाकर जीवन के उद्देश्य को खोजा है। जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि आदि बन्धनों से छूटने के पुरुषार्थ को ही जीवन का सबसे बड़ा ध्येय माना गया है। बिना इन बन्धनों से छूटे जीवन का सिलसिला बन्द नहीं होता है। मुक्तावस्था मनुष्य–जीवन में ही प्राप्त होती है। इसलिये भी यह नरतन दुर्लभ व अमूल्य है। इस मनुष्य शरीर में ही जीवन की सबसे ऊँची उड़ान अध्यात्म तथा मोक्ष सम्भव है। अन्य किसी चिन्तनधारा में जीवन का इतना उच्च लक्ष्य व आदर्श नहीं मिलता है। अध्यात्म और जीवनोद्देश्य की खोज भारत की **विश्व को महान् देन है। हमें इस जन्म को सँभालना है। यदि इस जीवन में मूल से भटक गए, सत्य जीवनपथ छूट गया और भक्तिमार्ग पर नहीं चले, तो जीवन अपूर्ण एवं उद्देश्यहीन बन जाएगा।**

129/बी.जे.शालीमार बाग
नई दिल्ली

ब्रह्मचर्य का सीधा सा अर्थ है – संयम

● भद्रसेन

ब्रह्मचर्य के जहां प्रकरण के अनुसार अनेक अर्थ हैं, वहां इस प्रकरण में शरीर विज्ञान के अनुरूप शाब्दिक अर्थ–वीर्यरक्षा से है। ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्य लाभः योग 2,38 विशेष विवरण के लिए 'सुखी कैसे रहें? का यही प्रकरण देखें। किसी द्वारा खाए गए भोजन से रस, रक्त मांस, मज्जा मेद, अस्थि और वीर्य के रूप में क्रमशः ये सात धातुएं बनती हैं। अतः इस अन्तिम धातु की विशेष रूप से बैंक के कोष की तरह विशेष सावधानी से रक्षा अपेक्षित है, जिस से शक्ति स्थायी रह सके। अतः ब्रह्मचर्य का यहां अभिप्राय है–संयम सदाचार–क्योंकि मानसिक तथा इन्द्रियों के संयम और सदाचार से ही वीर्यरक्षा सम्भव होती है। ब्रह्मचर्य के विविध अर्थों के लिए 'ब्रह्मदर्शन' देखिए।

ग्रहस्थ आश्रम में इस के संयम अर्थ को सामने रख कर ही तो कहा जाता है– 'एक नारी सदा ब्रह्मचारी'। आज की बदलती परिस्थितियों में यह बात बहुत ही महत्व पूर्ण है। दम्पती का परस्पर इस दृष्टि से सच्चा–सुच्चा रहना ही उन का ब्रह्मचर्य है और यह बात पति–पत्नी का परम धर्म है। आजीवन एक दूसरे को हर कार्य में विश्वास में लेकर चलें अर्थात कभी भी एक दूयरे से छिपा कर, धोखे में रखकर

कोई कार्य न करें। अन्यो अन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः। एष धर्माः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः।। मनु. 9, 11 इसी को परस्पर का अव्यभिचार कहा जा सकता है, व्यभिचार न करना ही अव्यभिचार है और व्यभिचार का अर्थ है अनैकान्ति को व्यविचारः न्याय. 1,2,5 एक जगह न टिकना, प्रस्तुत प्रसंग में इस का भाव है–एक ठिकाना न रखना। दाम्पत्य जीवन की अन्य सब बातें गौण, छोटे धर्म हैं। भारतीय भावना के अनुसार दाम्पत्य जीवन की सफलता, शुचिता की यही विशेष कसौटी है। अत एव भारतीय शास्त्र इस ओर विशेष ध्यान आकर्षित करते हैं।

ऋतावतौ स्व्दारेषु सङ्गतिश्च विधानतः। ब्रह्मचर्यं तत्प्रोत्तं गृहस्था श्रम वासिनाम्।। वसिष्ठ संहिता ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदार निरतः सदा। मनु. 3.45 ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राक्षमे वसन् मनु. 3,50

जैसे यथारुचि भोजन खाने पर उस से अधिक रुचिकर भी बाद में और भोजन सामने आ सकता है। तब किसी सीमा पर स्वास्थ्य की दृष्टि से सन्तोष करना आवश्यक हो जाता है। ऐसे ही किसी से विवाह कर लेने पर परस्पर सन्तुष्टि शुचिता का पालन, तृप्ति की अनुभूति सांझे वैवाहिक जीवन की सफलता के लिए बहुत ज़रूरी है और तभी सामाजिक मर्यादा, व्यवस्था चल सकती है। अतः परस्पर एक दूसरे से सन्तोष ही

अधिक सुखकर हो सकता है। सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने घने–वृद्धचाणक्य 'स्वपत्नी से रति–स्वयोषिति रतिः–नीति. 62, और स्वपत्नी से ही जिन का है सब भान्ति पूर्ण सन्तोष,स्वदार परितुष्टः नीतिः 106, एका नारी नीति. 69 गोपाल दास गुप्तकृत नीतिशतक का भावानुवाद 'जो अपनी ही स्त्री से प्रसन्न और ऋतुगामी होता है वह गृहस्थ भी ब्रह्मचारी के सहश है'–सत्यार्थ–4,88 वैसे अतृप्ति, असन्तोष की कोई सीमा नहीं।

धनेषु जीवितव्येषु स्त्रीषु चाहारकर्मसु। दर्पण 16,13 अतृदाः प्राणिनः सर्वे माता यास्यन्ति शान्ति च।। चाणक्यनीति

अन्यत्र की भावना–अविश्वास,पतन विवाद, द्वेष का ही कारण बनती है। इसी दृष्टि से ही नीतिकार भर्तृहरि ने सजग करते हुए कहा है कि मन को संभालने के लिए सदा पर नारियों की ऐसी चर्चा से बचें, युवतिजनकथामूकभावः परेषाम् नीति. 26 परधेन परयोषिति च स्प्रहा प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम्। नीति. 52 ऐसी चर्चा का रसिक न बने, अन्यथा विचारों में अस्थिरता आती है और वह फिर फिर डांवां डोल होने का कारण बनती है। हां, ऐसी भावना से ही – 'स्मरणं कीर्तनं के लिः–पद्य में आठ प्रकार के प्रसंगों से संभलने के लिए ब्रह्मचरी को सावधान किया जाता है अर्थात् कामवासना के चिन्तन से दूर रहें।

शालीमार बाग होशियारपुर
मो. न. 09464064398

ईश्वर की सर्वज्ञता और कर्मफल–कुछ विचारणीय बातें

● भावेश मेरजा

सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में ऋषि दयानन्द ने लिखा है–

–परमेश्वर त्रिकालदर्शी है इस से भविष्यत् की बातें जानता है। वह जैसा निश्चय करेगा जीव वैसा ही करेगा। इस से जीव स्वतन्त्र नहीं और जीव को ईश्वर दण्ड भी नहीं दे सकता क्योंकि जैसा ईश्वर ने अपने ज्ञान से निश्चित किया है वैसा ही जीव करता है।

(उत्तर)– ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता का काम है। क्योंकि जो होकर न रहे वह भूतकाल और न होके होवे वह भविष्यत्काल कहाता है। क्या ईश्वर को काई ज्ञान होके नहीं रहता तथा न होके होता है? इसलिए परमेश्वर का ज्ञान सदा एकरस, अखण्डित वर्तमान रहता है। भूत, भविष्यत् जीवों के लिये है। हां, जीवों के कर्म की अपेक्षा से त्रिकालज्ञता ईश्वर में है, स्वतः नहीं। जैसा स्वतन्त्रता से जीव करता है वैसा ही सर्वज्ञता से ईश्वर जानता है और जैसा ईश्वर जानता है वैसा जीव करता है। अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तमान के ज्ञान और फल देने में ईश्वर स्वतन्त्र और जीव किंचित वर्तमान और कर्म करने में स्वतन्त्र है। ईश्वर का अनादि ज्ञान होने से जैसा कर्म का ज्ञान है वैसा ही दण्ड देने का भी ज्ञान अनादि है। दोनों ज्ञान उस के सत्य हैं। क्या कर्म–ज्ञान सच्चा और दण्ड–ज्ञान मिथ्या कभी हो सकता है? इसलिये इस में कोई भी दोष नहीं आता। ('सत्यार्थ प्रकाश' सप्तम समुल्लास)

सामान्य पाठकों को सत्यार्थ प्रकाश का उक्त स्थल समझने में पर्याप्त कठिन लगता है। इस सन्दर्भ को समझने में निम्नलिखित बातें विचारणीय हैं–

1. यह तो निर्विवाद है कि जीवात्मा कर्म करने में स्वतन्त्र है। ईश्वर जीवों के कर्मों का यथायोग्य न्यायपूर्वक फल देता है, अर्थात् वह कर्मफलदाता है। फल देने के लिए ईश्वर को मनुष्य अथवा जीव के सर्व कर्मों का ठीक–ठीक ज्ञान होना परम आवश्यक है। अन्यथा वह ठीक–ठीक न्याय नहीं कर सकता। इस जीव ने अभी तक मनुष्य तन पाकर क्या–क्या कर्म किए हैं, यह जानकर ही तो ईश्वर द्वारा उसे न्यायोचित फल दिया जा सकताहै। मोक्षावस्था के पश्चात् जीव का जन्म मनुष्य योनि में होता है उसका आधार भी तो उस जीव के शेष बचे कर्मों को ही माना जाता है। अर्थात् ईश्वर के ज्ञान में उस जीव के उन शेष कर्मों का ज्ञान भी इतने अत्यन्त दीर्घ काल व्यतीत होने पर भी बना रहता है। अन्यथा मोक्ष के पश्चात् किस आधार पर ईश्वर उसको मनुष्य के रूप में जन्म दे पाता? कर्मफल हेतु ईश्वर को जीव के समस्त कर्मों का ज्ञान होना अपेक्षित है। उसका निषेध कैसे किया जा सकता है? इसीलिए तो ऋषि ने लिखा है कि ईश्वर का 'कर्म–ज्ञान' सत्य ही होता है। अतः इतना तो आसानी से समझ में आता है कि मनुष्य अपने जीवन में जैसे–जैसे नए–नए कर्म करता जाता है, वैसे–वैसे ईश्वर भी उसके उन सभी कर्मों को यथावत् जानता जाता है। सत्यार्थ प्रकाश के इसी समुल्लास में यजुर्वेद 40.16 मन्त्र के अर्थ में ऋषि ने ईश्वर के लिए लिखा है– 'सब को जाननेहारे परमात्मन्'–**विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्**। ईश्वर सब को जानता है अर्थात् वह सभी जीवात्माओं के समस्त कर्मों को भी जानता है जीवात्मा अल्पज्ञ होने से अपने समस्त कर्मों को स्वयं भी नहीं जान सकता है। समस्त जीवों के समस्त कर्मों का यथावत् ज्ञान केवल और केवल ईश्वर ही रख सकता है।

2.वैसे ईश्वर का ज्ञान उसका स्वाभाविक गुण ही माना जाता है। परन्तु ईश्वर को जीवों के कर्म का जो ज्ञान होता है, उस ज्ञान को क्या उसका (ईश्वर का) नैमित्तिक ज्ञान माना जाना चाहिए? यह विचारणीय है। क्योंकि यह ज्ञान तो निमित्त से अर्थात् जीवों के कर्म–स्वातन्त्र्य से ही, कर्म करने के पश्चात् ही ईश्वर को होता होगा। ईश्वर को नैमित्तिक ज्ञान होने की बात पुनः उसकी सर्वज्ञता पर आपत्ति पैदा करती है।

3. यह भी विचारणीय है कि क्या ईश्वर अनुमान करता है? या उसका समस्त ज्ञान केवल प्रत्यक्ष ही होता है? जैसे हम अल्पज्ञ जीव अनुमान का अवलम्बन करते हैं और विधिवत् किया गया हमारा अनुमान प्रायः सत्य सिद्ध होता है, क्या वैसे ईश्वर भी हम जीवों के भावी कर्मों का अनुमान करता होगा? जैसे कि, मोहन प्रति रविवार आर्य समाज जाता है। उसने प्रण किया है ऐसा। तो क्या अगले रविवार को भी मोहन आर्यसमाज जाएगा–ऐसा अनुमान ईश्वर के ज्ञान में सम्भव है? मोहन उस दिन वास्तव में आर्यसमाज जाता है या नहीं–यह तो उस अगले रविवार को ही निश्चित होगा। मगर कुछ पूर्व अनुमान भी तो किया जा सकता है। ईश्वर तो सर्व जीवों के भूत एवं वर्तमान के सम्बन्ध में सब कुछ जानता है, अतः उसका अनुमान तो एक दृष्टि से 'पूर्ण अनुमान' ही होगा। क्या ईश्वर को हमारे भावी कर्मों का अनुमान आधारित ज्ञान होता है ऐसा मानने में कोई सिद्धान्त–दोष दिखाई देता है?

4. हां, इसमें इतना तो स्पष्ट है कि हम अल्पज्ञ मनुष्य ज्ञान–प्राप्ति के लिए जैसे आठ प्रमाणों का बुद्धिपूर्वक प्रयोग करते हैं, वैसा प्रमाणों का प्रयोग करने की तो ईश्वर को बिल्कुल आवश्यकता नहीं पड़ती होगी, क्योंकि वह सर्वव्यापक, इन्द्रियादि रहित, चेतन सत्ता है। फिर भी जीव के पूर्व कर्म, संकल्प, प्रयत्न, सामर्थ्य आदि को जानकर उन्हीं के आधार पर क्या ईश्वर उस जीव के द्वारा किए जाने वाले भावी कर्म का कुछ भी अनुमान नहीं कर सकता होगा? सर्वज्ञ होने का तात्पर्य क्या यह है कि उसे जीवों के इन भावी कर्मों की सम्भावनाओं का किंचत् भी ज्ञान नहीं होना चाहिए? क्या वह उसके ज्ञान का विषय ही नहीं होता होगा?

परमेश्वर त्रिकालदर्शी है इस से भविष्यत् की बातें जानता है। वह जैसा निश्चय करेगा जीव वैसा ही करेगा। इस से जीव स्वतन्त्र नहीं और जीव को ईश्वर दण्ड भी नहीं दे सकता क्योंकि जैसा ईश्वर ने अपने ज्ञान से निश्चित किया है वैसा ही जीव करता है।

5. कई आर्य विद्वानों का मन्तव्य है कि ईश्वर सर्वज्ञ होने से उसके ज्ञान में किसी भी प्रकार की वृद्धि नहीं मानी जा सकती। हां, उसके 'ज्ञान की आवृत्ति' तो मानी जा सकती है, क्योंकि ईश्वर के ज्ञान में वृद्धि मानने से तो उसकी सर्वज्ञता ही खण्डित हो जाएगी। ईश्वर की सर्वज्ञता खण्डित न हो जाए इसलिए ऐसा समाधान प्रस्तुत किया जाता है कि जीवात्माएं क्या–क्या कर सकती हैं, कितने विभिन्न प्रकार के शुभ, अशुभ और मिश्र कर्म कर सकती हैं, इसका अर्थात् ऐसे सम्भावित समस्त कर्मों की सूची ईश्वर को अनादि काल से पता है। अतः कोई भी मनुष्य चाहे कोई भी कर्म करे, उसका वह कर्म ईश्वर के उस ज्ञान की दृष्टि से सर्वथा नया कर्म नहीं होगा। क्योंकि वह इस बात को सदैव जानता ही होता है कि मनुष्य या जीवात्मा ऐसा, इस प्रकार का कर्म भी कर सकता है। इस दृष्टि से विचार करने से ईश्वर की सर्वज्ञता भी बनी रहती है।

6. यह भी विचारणीय है कि ऋषि दयानन्द के–''जैसा स्वतन्त्रता से जीव करता है वैसा ही सर्वज्ञता से ईश्वर जानता है और जैसा ईश्वर जानता है वैसा जीव करता है।''–इस कथन में जो 'करता' और 'जानता' लिखा गया है, क्या ये उपर्युक्त 'समस्त जीवों के सम्भावित समस्त कर्मों की सूची' के सन्दर्भ में लिखा गया है, या एक–एक जीव के द्वारा किए जाने वाले कर्म–विशेष को ध्यान में रखकर लिखा गया है?

7. क्या सूची वाले उपर्युक्त समाधान से हमारी एतद् विषयक जिज्ञासा का पूर्ण समापन हो जाता है ? जैसे कि –मोहन नामक मनुष्य ने आज कोई पुण्य कर्म किया। अब ईश्वर को इस बात का ज्ञान तो तत्काल अर्थात् उसी समय अवश्य हो ही जाएगा कि मोहन नामधारी इस मनुष्य आत्मा ने आज यह एक पुण्य कर्म किया है। बिना इस ज्ञान के वह मोहन की आत्मा को उस कर्म का आगे शुभ फल कैसे दे सकता है? मोहन के उस कर्म की ईश्वर को हुई इस जानकारी को ईश्वर के ज्ञान में हुई वृद्धि समझनी चाहिए या केवल 'आवृत्ति'?–यह विचारणीय है।

8. सामान्य दृष्टि से तो मोहन द्वारा किए गए इस कर्म की जानकारी ईश्वर को उस कर्म करते समय ही हुई होने से उसे ईश्वर के ज्ञान में हुई वृद्धि या नवीन ज्ञान ही प्रतीत होता है। मगर जैसा ऊपर बताया गया है कि ईश्वर में ज्ञान–वृद्धि हमें सिद्धान्त रूप में स्वीकार्य इसलिए नहीं है कि हम उसे सर्वज्ञ मानते हैं और सर्वज्ञ के ज्ञान में वृद्धि कैसे मानी जा सकती है? दूसरी ओर बिना कर्म को जाने कि इस आत्मा के द्वारा यह कर्म हुआ है, ईश्वर किसी जीव–विशेष को इस कर्म का फल भी कैसे प्रदान करेगा? यह समस्या सुलझाने की महती आवश्यकता है। क्योंकि जीवात्माओं के समस्त सम्भावित कर्मों की सामान्य सूची का ईश्वर को सदा से ज्ञान होना एक बात है, और किसी जीव–विशेष द्वारा, कौन–सा कर्म, क्यों और कब किया गया, यह सब जानना विशेष बात है। कर्मफल के लिए तो ईश्वर को विशेष बात का कि इस आत्मा ने यह कर्म किया ऐसा ज्ञान होना आवश्यक प्रतीत होता है, ऐसा हमारी सामान्य बुद्धि में आता है। केवल उपरोक्त सभी जीवात्माओं के समस्त सम्भावित कर्मों की सामान्य सूची के ज्ञान से तो किसी जीव–विशेष को उसके कर्म–विशेष का फल कैसे दिया जा सकता है?–यह भी तो ठीक से समझना होगा।

इसलिए आर्य दार्शनिक चिन्तकों से विनम्र निवेदन है कि वे इस समस्या पर उचित मार्गदर्शन प्रस्तुत करने की कृपा करें, जिससे सत्यार्थ प्रकाश का यह स्थान हमारे जैसे सामान्य पाठकों की समझ में ठीक–से आ सके। आदरणीया श्रीमती उत्तरा जी नेरूर्कर ने 'दयानन्द सन्देश' के जनवरी–2014 के अंक में इसी विषय को लेकर अपने विचार प्रकट किए हैं। उनका वह लेख भी एतद् विषयक चिन्तन सामग्री प्रदान करता है।

8–17 टाउनशिप,
पो. नर्मदानगर,
जि. भरुच

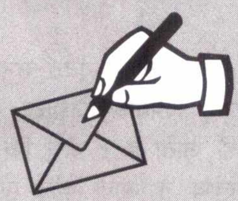

पत्र/कविता

देश विभाजन के बाद के दिन

देश विभाजन के बाद के दिन थे। गांधी जी दिल्ली के बिड़ला हाउस में ठहरे हुए थे और वहां नित्य प्रातः सायं प्रार्थना सभा होती थी। वे एक दिन सप्ताह में मौन भी रहते थे। पं धर्मदेव विद्यावाचस्पति ने महात्मा जी से 'विचार संवाद के लिए इण्टरवयू का समय मांगा जो उन्हें मिल गया। किन्तु सप्ताह भर तक चलने वाले इस साक्षात्कार में एक दिन मौन का आ गया। आज मौन है और महात्माजी पर्चियों पर लिख कर अपना उत्तर समाधान दे रहे हैं। दो प्रश्न मुख्य थे जन्मना वर्ण व्यवस्था तथा राघव, रघुपति, राजा के नाम से सभाओं में प्रस्तुत राम क्या मनुष्य नहीं हैं? पं. धर्मदेव का कथन था कि राम रघुवंशी हैं, राजा हैं तो निश्चय ही मनुष्य हैं, ईश्वर नहीं। तत्पश्चात उन्होंने वेद प्रतिपादित निराकार, अजन्मा स्वरूप पेश किया। महात्मा जी ने पं जी के विचारों से सहमति दिखाते हुए लिखा–यों तो मैं भी आर्य समाजी हूं। पर्ची पं जी से वापस ले ली और फाड़ दी। पं.जी ने बाद में कहा महात्मा जी की चतुराई से एक क्रान्तिकारी दस्तावेज मेरे हाथ आते–आते रह गया।

भवानीलाल भारतीय
श्री गंगानगर

****

महान भारत को महान रखना

हर हाल में भारत का आन बान शान रखना,
वसीयत करके वतन के नाम, जान रखना।

एकता अखंडता, प्रेम भाईचारे से रहकर,
विश्वगुरु भारत की अमिट पहचान रखना।

हमारे सुख शांति पर जलनेवाले बहुत हैं
सदा सुरक्षित ये धरती आसमान रखना।

चाहे कोई कुछ भी बने जहाँ भी रहे मगर,
वतन की मिट्टी, हवा पानी का अहसान रखना।

भारत माता के सारे सच्चे सपूत बनकर,
याद हमेशा अमर जवानों का बलिदान रखना।

लिखकर अंबर चाँद सूरज और सितारों पर,
वंदे मातरम्, जय जवान जय किसान रखना।

अनगिनत बलिदान देकर आज़ादी पायी है,
विनती है सबसे महान भारत को महान रखना,

नरेश हमिलपुरकर
चिरगुघा–585412
बीदर (कर्नाटक)
मो. 08951311253

आर्य समाज एक आन्दोलन है जो हमेशा चलता रहे

महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना एक प्रगतिशील तथा क्रांतिकारी आन्दोलन के रूप में की थी। इसका मुख्य कार्य वेद का आदेश **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** अर्थात् संसार को श्रेष्ठ बनाओ। यह ऐसा कार्य है जो कभी खत्म नहीं होने वाला। महर्षि दयानन्द ने अकेले ही देशभर में घूम कर वेद का प्रचार किया और जनता को ईश्वर का सत्य स्वरूप बताया जो निराकार है अर्थात् वेद के अनुसार **'न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्यनाम महद्यशः** (यजुर्वेद 32–3) अर्थात् उसकी कोई मूर्ति नहीं। पौराणिक पण्डे पुजारी मन्दिरों में मूर्तियाँ स्थापित करके उनमें झूठी प्रान प्रतिष्ठा करके उनकी पूजा करने का पाखंड करते हैं। महर्षि दयानन्द के पश्चात् गुरुदत्त, लेखराम, हंसराज, लाजपत राय, मुन्शीराम इत्यादि कई आर्य युवक मैदान में आये और अपना जीवन आर्य समाज के अर्पण कर दिया। इन युवकों ने महर्षि दयानन्द के अनुसार अन्य सामाजिक बुराइयों सती प्रथा, बालविवाह, छूआ छूत, जन्म की जात पात इत्यादि का भी विरोध किया तथा आर्य समाज के छठे नियम के अनुसार अकाल, बाढ़ भूकम्प इत्यादि से पीड़ित लोगों की सहायता की। आर्य समाज के वेद प्रचार से सारे भारत तथा अनेक अन्य देशों में भी आर्य समाजों की स्थापना हुई जिस से लाखों व्यक्ति आर्य समाजी बने। देश भर में शिक्षा के लिये गुरु कुलों तथा डी.ए.वी स्कूल कालेजों की स्थापना कर दी जहाँ बच्चों को अच्छे नागरिक बनने के लिये नैतिक तथा धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है। महर्षि दयानन्द ने अनाथ बच्चों के लिये फिरोजपुर में अनाथालय और रेवाड़ी में गऊशाला की स्थापना की थी। उसके बाद आर्य समाज ने कई स्थानों पर गऊशालाओं की तथा अनाथालयों की स्थापना की जो अब तक चलाये जा रहे हैं। महात्मा गांधी द्वारा चलाये जा रहे आजादी के आन्दोलन में अर्थात् सत्याग्रह में भी आर्य समाज के लोगों ने सक्रिय भाग लिया। कई आर्य–युवक भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव, राम प्रसाद बिस्मिल, सोहन लाल पाठक इत्यादि, महर्षि दयानन्द से प्रभावित होकर देश की स्वतन्त्रता के लिये फांसी पर चढ़ गये।

अंग्रेज़ों और मुस्लिम लीग की कूट नीति से 15 अगस्त 1947 को देश का विभाजन हो गया। इस से आर्य समाज की बड़ी हानि हुई। इसकी अरबों रुपयों की सम्पत्ति तो पाकिस्तान में ही रह गई और अनेक लोग मुसलमानों ने झगड़ों में मार दिये। उस समय लाहौर नगर आर्य समाज का बड़ा गढ़ था जो पाकिस्तान में चला गया। इस से आर्य समाज का वेद प्रचार का कार्य ठप्प हो गया। पाकिस्तान से आये लोगों ने भारत में कई स्थानों पर नई आर्य समाजें तो बना लीं परन्तु वेद प्रचार का कार्य ढीला पड़ गया।

इसके बाद आर्य समाज केवल हवन यज्ञों पर ही आश्रित हो गया जिसके कारण देश भर में पाखंड और अंध विश्वास बढ़ने लगा। आर्य समाज ने इसका खंडन करना छोड़ दिया ताकि लोग नाराज न हो जायें। आज आर्य समाज के नये सदस्य बन नहीं रहे पुराने दिवंगत हो रहे हैं। अधिकांश परिवार भी आर्य समाजी नही हैं क्योंकि आर्य नेताओं ने महर्षि दयानन्द के आदेशानुसार वैदिक धर्म को नहीं अपनाया तथा परोपकार के कार्य भी छोड़ दिये। अब आर्य समाजों को मंदिर का रूप दिया गया है इसलिये आर्य मन्दिरों में दैनिक सत्संग, योगाभ्यास तथा परोपकार के कार्य करने चाहिए। सत्संग दोनों समय हो, हवन छोटे रूप में एक ही समय किया जा सकता है। प्रत्येक आर्य समाज को महीने में एक दो बार आर्य समाज से बाहर निकल कर किसी कालोनी में वेद प्रचार का आयोजन करना चाहिए। युवक युवतियों को किसी प्रकार का नशा न करने की शिक्षा देनी चाहिये और विवाह से पहले ब्रह्मचर्य के पालन का यत्न करना चाहिये। वेद् के प्रचार में किसी से डरने की आवश्यकता नहीं है। प्रेम पूर्वक लोगों को समझाना चाहिये। इससे ही पाखंड और अन्ध विश्वास समाप्त हो सकता है। सब आर्य समाजों में छोटे बच्चों के लिये आर्य कुमार सभा और बड़ों के लिये आर्य वीर दल और युवक समाज के कार्यक्रम चलाये जाने चाहियें और जनता के लिये अनेक परोपकार के कार्य चलाये जायें। केवल सप्ताह में रविवार को हवन करके ही सन्तुष्ट नहीं होना चाहिये। आर्य समाज का आन्दोलन तो हमेशा चलता रहना चाहिये। गरीब व्यक्तियों के लिये सामूहिक सस्ते विवाहों का आयोजन करना चाहिये। तभी जनता आर्य समाज से जुड़ेगी जब आर्य समाज सामाजिक बुराई दहेज प्रथा तथा बाल विवाह, कन्या भ्रूण हत्या इत्यादि रोकने का कार्य करेगा।

अश्विनी कुमार पाठक
सी–233 नानक पुरा, नई दिल्ली
दूरभाष 26871636

****

धन्यवाद संपादक जी को ही दें।'

सुप्रतिष्ठित साप्ताहिक–आर्य जगत् में छपे मेरे लेख–कविताओं पर पंजाब से लेकर हैदराबाद महाराष्ट्र तक से शाबाशी मिल रही हैं। उन उत्साही पाठकों से मैं नम्रता पूर्वक धन्यवाद अर्पित करते हुए बता देता हूँ कि 'इसका सर्वाधिक श्रेय आर्य–जगत् के संपादकश्री का है, जो मेरे साधारण–लेखों को आर्य–जगत्–से स्वर्णपात्र (पत्र) में लाखों पाठकों के बीच प्रस्तुत करने की कृपा कर रहे हैं। धन्यवाद संपादक जी को ही दें।'

भवदीय–आर्यगिरी

****

हम स्तुतिशील देवों के संपर्क में रहें

● डॉ. अशोक आर्य

हम सदा स्तुतिशील, धार्मिक व कर्मनिष्ठ देवों के संपर्क में रहें। ऐसे देव जो वेद ज्ञान को प्राप्त करते हैं। जो समाधि के अभ्यस्त हैं तथा परमपिता का अपने हृदय में दर्शन करते हैं। इस बात का उपदेश ऋग्वेद अध्याय 10 सूक्त 63 का मंत्र संख्या 3 इस प्रकार कर रहा है–

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः।
उक्थशुष्मानृवृषभरांत्स्वप्नसस्तां आदित्यां अनु मदा स्वस्तये।। ऋग्वेद 10.63.3

इस मंत्र में चार बिंदुओं पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि–

1. देवों का अनुसरण करते हुए हर्ष हो :–

मानव को सदा अपने से बड़े का अनुकरण करने की इच्छा रहती है ताकि वह उससे कुछ गुण प्राप्त कर सके। फिर देव तो होते ही देने वाले हैं, इसलिए देवों से तो हम सदा ही कुछ न कुछ प्राप्त करते रहते हैं। इसलिए यह मंत्र भाग इस ओर ही इंगित करते हुए उपदेश कर रहा है कि :

जो सब ओर से, सब स्थानों से इस प्रकार अच्छाइयों को ग्रहण कर लेते हैं जैसे हंस पानी मिले दूध में से केवल दूध ही पीता है पानी को छोड़ देता है। इस प्रकार अच्छाइयों को ग्रहण करने वाले देवों का हम सदा अनुसरण करें, उनके अनुगामी होकर, उनके पीछे चलें। इनके पीछे चलते हुए, इनका अनुसरण करते हुए हम हर्ष का, प्रसन्नता का, खुशी का अनुभव करें। इनके पीछे चलते हुए हमें सदा प्रसन्नता हो। ऐसे देवताओं का प्रसन्नतापूर्वक अनुसरण करने से हम अपने जीवन की स्थिति को उत्तम बनाने में सफल होंगे। जो आदित्य हैं, ऐसे देव लोगों का अनुगमन करने से हम भी आदान वृत्ति वाले बनेंगे, देवत्व के गुणों का दान करेंगे। इस प्रकार हमारी स्थिति भी उत्तम होगी।

2. हमारा जीवन मधुर हो :–

हम जब देवों का, आदित्यों का अनुसरण करते हैं, ऐसे आदित्यों का जिनके लिए वेद माता मिठास से भरपूर ज्ञान का दुग्ध पिलाती है अर्थात् जो वेद ज्ञान के स्वाध्याय में लगे रहते हैं। इस मंत्र में शब्द आए हैं, स्तुता माया वेद माता इन शब्दों के माध्यम से वेद को माता कहा गया है। इससे स्पष्ट होता है कि वेद हमारी मातृवत् पालन करता है। जिस प्रकार से माता अपने बच्चे को दुग्धपान करा कर उसका पोषण करती है, उस प्रकार ही वेद भी ज्ञान रूपी दूध का पान कराते हुए हमें ज्ञान के भंडारी बनाते हैं। इस प्रकार हम माधुर्य से युक्त हो जाते है, माधुर्य से परिपूर्ण हो जाते हैं। वेद माधुर्य पर अत्यधिक बल देता है क्योंकि मधुर व्यक्ति अपने सब कार्यों को सफलता पूर्वक संपन्न करने की क्षमता रखता है।

इतना ही नहीं वेद के ज्ञान को प्राप्त करने से हमारा सब प्रकार का रागद्वेष आदि दूर होता है। जब हम राग द्वेष से ऊपर उठ जाते हैं तो स्वयमेव ही मधुरता को प्राप्त करते हैं। अतः वेद का ज्ञानी कभी राग् द्वेष में रह ही नहीं सकता। इस प्रकार वह राग द्वेष आदि से ऊपर उठता है तथा उसका जीवन माधुर्य से भर जाता है, सदा प्रसन्न रहता है, खुश रहता है।

3. प्रभु हमें उत्कर्ष बनाता है' –

विगत मंत्र में दयुलोक, अंतरिक्ष लोक तथा पृथ्वी लोक वर्णन किया गया था। यह मंत्र अपने तीसरे खंड में पुनः उस चर्चा को आगे बढ़ाते हुए उपदेश करता है कि हम ऐसे देवों के संपर्क में आवें, जिनके लिए दयुलोक अर्थात् मस्तिष्क अमृत का वर्णन करता है। जब मस्तिष्कस्थ चक्र में सहस्रार चक्र में जिस समय प्राणों का सयंम होता है तो इससे योगी को अर्थात् जो इस प्रकार का योग, जोड़ कर रहे होते हैं, उन्हें वह ऐसा आनंद पाने का कारण बनते है। जिस आनंद का कभी वर्णन नहीं किया जा सकता, यह आनंद अनिर्वचनीय होता है। इस का वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता।

हृदय रूपी अंतरिक्ष हमारे अंदर उस प्रभु का वर्धन करने वाला होता है, जिसको हम आदरणीय कहते हैं। भाव यह है कि हमारे लिए प्रभु आदरणीय होता है। हम सदा उस प्रभु का आदर करते हैं। इसलिए उसे आदरणीय मानते हैं। ऐसे प्रभु की जब हमारे अंदर वृद्धि होगी तो निश्चय ही हममें भी आदर योग्य शक्तियों की वृद्धि होगी तथा हम सदा ऐसे कार्य करेंगे जिससे आद सत्कार की वृद्धि हो। ऐसे देवों के लिए हृदय में उसे पिता की भावना का उत्कर्ष होता है, उदय होता है। यह वह परम पिता परमात्मा ही है, जिसका दर्शन हमें पवित्र व शांत जीवन वाला बनाता है।

4. हम यज्यशील, परोपकारी व धर्म के कार्य करें:–

मंत्र अपने अंतिम भाग में उपदेश कर रहा है कि हम उन देवों के संपर्क में आवें, जो स्रोतों के बल वाले हों। स्रोतों से अभिप्राय वेद मंत्रों से होता है अर्थात् जो नित्य स्वाध्याय करने वाले हों, हम ऐसे देवों के संपर्क में रहें। इतना ही नहीं यह मंत्रखंड कहता है कि हम उन देवों के संपर्क में रहें, जो प्रभु की प्रार्थना करते हुए, प्रभु का स्तवन करने हुए, प्रभु का स्मरण करते हुए, उस प्रभु के सपंर्क में रहते हों। इस प्रकार प्रभु के संपर्क में आने स प्रभु के बल वाले अर्थात् प्रभुत्ता से संपन्न हों। इस प्रकार जो दवे अपने अंदर सदा धर्म की भावना को भरते रहते हैं अर्थात् सदा धर्म में विचरण करते हैं। धर्मशील होने के कारण जो सदा धर्मानुरूप उत्तम कर्म करते हैं, सदा श्रेष्ठ कर्म करते हैं इस प्रकार के देवों के संपर्क में आने से हम भी स्तुतिशील, धार्मिक तथा उत्तम यज्ञादि कर्मों के करने वाले बनें अर्थात् हम सदा परोपकारी व उत्तम कार्य करें

मंत्र अपने अंतिम भाग में उपदेश कर रहा है कि हम उन देवों के संपर्क में आवें, जो स्रोतों के बल वाले हों। स्रोतों से अभिप्राय वेद मंत्रों से होता है अर्थात् जो नित्य स्वाध्याय करने वाले हों, हम ऐसे देवों के संपर्क में रहें। इतना ही नहीं यह मंत्रखंड कहता है कि हम उन देवों के संपर्क में रहें, जो प्रभु की प्रार्थना करते हुए, प्रभु का स्तवन करने हुए, प्रभु का स्मरण करते हुए, उस प्रभु के सपंर्क में रहते हों। इस प्रकार प्रभु के संपर्क में आने स प्रभु के बल वाले अर्थात् प्रभुत्ता से संपन्न हों। इस प्रकार जो दवे अपने अंदर सदा धर्म की भावना को भरते रहते हैं अर्थात् सदा धर्म में विचरण करते हैं। धर्मशील होने के कारण जो सदा धर्मानुरूप उत्तम कर्म करते हैं, सदा श्रेष्ठ कर्म करते हैं इस प्रकार के देवों के संपर्क में आने से हम भी स्तुतिशील, धार्मिक तथा उत्तम यज्ञादि कर्मों के करने वाले बनें अर्थात् हम सदा परोपकारी व उत्तम कार्य करें

104–शिप्रा अपार्टमेंट कौशाम्बी,
201010 गाजियाबाद, दूरभाष–0120 2773400
09718528068

☞ पृष्ठ 07 का शेष

सनातन धर्म और...

को दुर्गन्ध में बदल देना पाप कर्म है। डाली पर रहते हुए फूल सूखने पर भी कभी दुर्गन्ध नहीं देता।

19. जगराता धार्मिक कर्म नहीं है, अधार्मिक कर्म है – जगराता न धर्म का काम है और न ही पुण्य का काम है। जगराता में ऊँची आवाज में लाउडस्पीकर लगाकर सैकड़ों/हजारों लोगों को परेशान किया जाता है, विद्यार्थियों की पढ़ाई में रुकावट पड़ती है, रोगियों का चैन छिनता है, सोने वाले सो नहीं सकते। शोर प्रदूषण बहुत बढ़ जाता है जो कानों के लिए तथा दिमाग के लिए हानिकर है।

ईश्वर को तो कुछ भी सुनाने के लिए ऊँची आवाज की जरूरत नहीं है। वह आपके मन की बात भी जानता है। दूसरे लोगों को जबरदस्ती सुनाने का आपका कोई अधिकार नहीं है। सब लोगों की अपनी–अपनी मान्यताएं हैं। बहुत से लोग आपके जगराते को देखना या सुनना नहीं चाहते। आप उनकी आजादी छीन रहे हैं। जो लोग आपके जगराते में आएं और आपके पंडाल में बैठकर सुनना चाहें आप उन्हें सुना सकते हैं। पर आपके लाउडस्पीकर की आवाज उस शामियाने के बाहर नहीं जानी चाहिए।

जगराते में जो तारा देवी की कहानी सुनाई जाती है वह पूरी तरह से झूठी, असम्भव, अत्यन्त भयंकर तथा गुमराह करने वाली है। तारा देवी के कहने पर उसके पति महाराजा हरिश्चन्द्र ने अपने प्रिय नीले घोड़े का सिर काट दिया, फिर अपने पुत्र का सिर काट दिया, फिर घोड़ा और पुत्र–दोनों के शरीरों के टुकड़े–टुकड़े करके एक बरतन में डालकर आग पर रखकर उनको पकाया। पक जाने पर तारा ने उस बरतन को उठाकर माता महाकाली को भोग लगाया और राजा को उसमें से प्रसाद के तौर पर दिया। फिर मां (महाकाली) ने उस घोड़े को तथा बेटे को जीवित कर दिया। ऐसी बेतुका और बेहूदा कहानी सुन–सुनाकर जगराते वाले पता नहीं क्या सन्देश देना चाहते हैं। ऐसी कहानियों के प्रभाव में आकर तथा तान्त्रिकों के कहने पर लोग अपने और दूसरों के बच्चों को मारने का अपराध कर बैठते हैं।

जगराता करने वाले लोग आम तौर पर शराबी–कबाबी होते हैं। इस प्रकार जगराते से सम्बन्धित हर बात अधर्म तथा पाप कर्म है।

831 सैक्टर 10
पंचकूला, हरियाणा
दूरभाषः 0172–4010679

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11 \6066\2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103 \2015-17
Posted at N.D.P.S.O. ON (14-15)19-20 \10 \2015
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39 \57

जगदीश चन्द्र डी.ए.वी. कॉलेज दसूहा में वेद प्रचार सप्ताह के अन्तर्गत आर्यपर्व का आयोजन

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली के निर्देशानुसार जगदीश चन्द्र डी.ए.वी. कॉलेज दसूहा (जिला होशियारपुर) में वेद प्रचार सप्ताह का आयोजन किया गया। इसमें विद्यार्थियों को आर्य समाज की शिक्षाओं व परम्पराओं से अवगत कराया गया। इस कड़ी के अन्तर्गत रक्षा बन्धन के पावन पर्व पर कॉलेज के तत्वावधान में हवन यज्ञ का आयोजन किया गया जिसमें कॉलेज के प्रिंसीपल डॉ. राजेश कुमार महाजन, समस्त प्राध्यापक

वर्ग व अन्य कार्यरत कर्मचारियों तथा विद्यार्थियों ने हवन यज्ञ में भाग लिया। सभी के साथ विद्यार्थियो ने भी बड़े श्रद्धा–भाव से हवन–यज्ञ में आहूतियाँ डाली। इस शुभ–अवसर पर प्रिंसीपल डॉ. महाजन जी ने महर्षि दयानन्द जी की शिक्षाओं व उनके आदर्शों पर प्रकाश डाला व विद्यार्थियों को वेदों के महत्व से परिचित कराते हुए आज के युग में उनकी प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला। संस्कृत विभाग के अध्यक्ष डॉ. गुरमीत सिंह जी ने विद्यार्थियों को वेदों से जुड़ने की शिक्षा दी क्योंकि आज के समय यही ज्ञान उन्हें एक आदर्श नागरिक व नेक इन्सान बना सकता है। यज्ञ के इस आयोजन ने सभी को भक्ति–भाव व आनन्द से विभोर कर दिया। कॉलेज के बी.ए. (तृतीय वर्ष) के विद्यार्थी जुगराज सिंह ने स्वरचित कविता 'भ्रूण हत्या' का गान किया, जिसमें नारी को उसके अधिकारों के प्रति सचेत किया। उसे गुणों व शक्ति के बल पर समाज में अपनी पहचान बनाने की प्रेरणा दी।

आर्य समाज मॉडल टाउन जालन्धर में पन्द्रह दिन तक चला श्रावणी उपाकर्म

आर्य समाज मन्दिर माडल टाउन जालन्धर के तत्त्वावधान में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के विचार के अनुसार जन–जन तक वेद के सन्देश को पहुँचाने के लिए श्रावणी उपाकर्म का यह विशाल वेद प्रचार कार्यक्रम अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से आयोजित किया गया। इस बार समाज के विशाल ए.सी. हाल में परिवारों की ओर से कार्यक्रम रखा गया था। प्रतिदिन 500 से 700 लोगों की उपस्थिति रही।

इस आयोजन में प्रतिदिन कार्यक्रम यज्ञ से प्रारम्भ किया गया। पं. सत्यप्रकाश शास्त्री एवं पं. बुद्धदेव वेदालंकार जी के पौरहित्य में यज्ञ हुआ। यज्ञ के उपरान्त श्रीमती रश्मि घई एवं सरदार श्री सुरेन्द्र सिंह गुलशन जी ने भिन्न–भिन्न विषयों में मधुर भजन प्रस्तुत किए। भजनों के पश्चात् दिल्ली से पधारे आचार्य राजु वैज्ञानिक जी ने वेद मन्त्रों पर अत्यन्त प्रभावशाली विचार रखने से पूर्व कहा कि हम यज्ञ करते हैं उस समय अग्न्याधान से पूर्व ईश्वर स्तुति प्रार्थना उपासना के आठ मन्त्रों का पाठ करते हैं। इन मन्त्रों का ऋषिवर स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने जो शब्दार्थ एवं भावार्थ लिखा है। उन अर्थों पर चिन्तन करने की आवश्यक्ता है। आचार्य जी ने ''ओ३म् विश्वानि देव'' मन्त्र पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि उस सर्वशक्तिमान परमात्मा ने अपनी ईक्षण शक्ति से सत्व, रज, तम, तीन गुणों से भौतिक जगत का निर्माण किया। आचार्य जी ने इस मन्त्र के एक–एक शब्द की व्याख्या अत्यन्त सहज सरल ढंग से प्रस्तुत की। **''हिरण्यगर्भ समवर्त्तताग्रे''** मन्त्र पर कहा वह खुद प्रकाशमान तथा सब लोकान्तरों को प्रकाशित करने वाला परमात्मा एक ही है। वही हर सृष्टि में सम्पूर्ण संसार को निर्माण के साथ धारण कर रहा है। हम कैसे उसकी भक्ति करें इस पर प्रेरणादायक विचार दिये। **''य आत्मदा बलदा''** इस मन्त्र की व्याख्या करते हुए बताया कि परमात्मा ही हर प्रकार का बल देने वाला उसके नियम में चलने से सुख तथा आनन्द की प्राप्ति और उसकी आज्ञा पालन ही परमात्मा की भक्ति होती है। **''यः प्राणतो निमिषतो''** मन्त्र पर विचार करते हुए आचार्य जी ने कहा कि वही जड़ चेतन का एकमात्र स्वामी है, सांसारिक पदार्थों को उसे समर्पित करके भोगने चाहिए। **''येन द्यौरुग्रा पृथिवी''** जिस परमात्मा ने लोक लोकान्तरों का निर्माण करके धारण किया है अपने नियन्त्रण में भ्रमण कर रहा है, सब सामर्थ्य से उसकी विशेष भक्ति करे, **''प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो''** सारे संसार का एक ही स्वामी है दूसरा कोई नहीं, वही सबकी हर शुभ कामना को पूरा करता है, **'' स नो बन्धुरर्जनिता''** वही परमात्मा हमारा सब कुछ है। हमारा नाम, स्थान, जन्मों आदि सब जानता है। विद्वान लोक उसके सानिध्य में परम आनन्द प्राप्त करते हैं। **''अग्ने नय सुपथा राये''** परमात्मा स्वयं प्रकाशस्वरूप सब को प्रकाशित करने वाला, वही हमें सन्मार्ग में प्रेरित करता है। आचार्य जी ने इन आठों मन्त्रों पर अत्यन्त सरल विचार प्रस्तुत किये जिसे श्रोताओं ने खूब पसन्द किया, फलस्वरूप दिन प्रतिदिन उपस्थिति बढ़ती गई।

पूरे कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए समाज के प्रधान श्री अरविन्द घई जी ने अन्त में कहा कि हम आचार्य जी के उपदेशों के अनुसार चलते हुए अपने जीवन को पवित्र बनावें तथा परमात्मा के नियमों का पालन करते हुए उनकी भक्ति करें। इसी से हमारा कल्याण होगा। कार्यक्रम का संचालन मन्त्री श्री अजय महाजन जी ने किया। कार्यक्रम के बीच में कई परिवारों ने ऋषि लंगर लगाया। प्रधान जी ने सत्संग के आयोजक परिवारों, विद्वानों तथा श्रोताओं का धन्यवाद किया। शान्तिपाठ के साथ कार्यक्रम समाप्त हो गया।

डी.ए.वी. आर. के. पुरम् ने मनाया शिक्षक दिवस

शिक्षक दिवस के अवसर पर मुख्य अतिथि मैनेजर श्री भाटिया जी, श्रीमती पूनम सिंह (आर्य समाज) श्रीमती कपूर, श्रीमती गिरिजा (पूर्व प्रधानाचार्य) श्रीमती सुनीता मल्होत्रा एवं निशि राय (पूर्व अध्यापिका) डी.ए.वी. की उपस्थिति में छात्रों ने कार्यक्रम प्रस्तुत किया जिसमें शिक्षा व ज्ञान के महत्व को संगीत व नृत्य द्वारा दर्शाया गया।

छात्रों ने अपने जीवन में शिक्षकों की उपस्थिति व मार्ग दर्शन की सराहना करते हुए धन्यवाद दिया। दूसरी तरफ छात्रों ने कुछ अपेक्षाएं भी व्यक्त की जैसे कि अध्यापकगण कक्षा में उनसे ज्यादा बातचीत करें केवल पढ़ाएँ नहीं उनके साथ हँसे, उनकी पूरी बात सुनें।

कार्यक्रम के अन्त में श्रीमती पूनम सिंह जी ने शिक्षक दिवस की बधाई देते हुए आयोजन की प्रशंसा की तथा कहा शिक्षक दिवस की प्रस्तुति एक नए ढंग से की गई जिसमें ज्ञान, आदर, मनोरंजन और समर्पण का भाव शामिल है।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**